फोकस इण्डिया
प्रकाशन
मार्च, 2015

क्या पारिस्थितिकीय खेती छोटे किसानों के लिए फायदेमंद है

इन खेतों से हमारे व्यावहारिक अनुभव

सहयोग
**रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग,
दक्षिण एशिया**

क्या पारिस्थितिकीय खेती छोटे किसानों के लिए फायदेमंद है

इन खेतों से हमारे व्यावहारिक अनुभव

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

क्या पारिस्थितिकीय खेती छोटे किसानों के लिए फायदेमंद है : इन खेतों से हमारे व्यावहारिक अनुभव

लेखक : **पारूल लक्ष्मी थापा**

प्रकाशन : **मार्च 2015**

द्वारा प्रकाशित : और इस पुस्तिका की प्रतियां पाने के लिए संपर्क

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ
33–डी, तीसरी मंजिल, विजय मंडल एनक्लेव
डीडीए एसएफएस फ्लैट्स, कालू सराय, हौज खास
नई दिल्ली–110016
टेलीफोन : 91–11–26563588 , 41049021
www.focusweb.org

सहयोग : **रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग, साउथ एशिया**
सेंटर फोर इंटरनेशनल कॉ–ऑपरेशन
सी–15, दूसरी मंजिल, सफदरजंग डेवलपमेंट एरिया मार्केट,
नई दिल्ली–110016
www.rosalux-southasia.org

छवियां और चित्र : लेखक (जब तक किसी के नाम का उल्लेख न किया जाए)

डिजाइन एवं मुद्रण : **पुलशॉप**, 9810213737

हम इस पुस्तिका को तैयार करने में समय और मदद देने के लिए निम्नलिखित लोगों एवं संगठनों के प्रति आभारी हैं : नन्दिनी एवं जयराम, द टिम्बक्तु कलेक्टिव एवं धरणी, तमिलनाडु वुमेन्स कलेक्टिव एवं शीलूजी, लिविंग फार्म्स के प्रदीप पात्रा, अग्रगामी और वे अनेक बड़े एवं छोटे किसान, जिन्होंने आधुनिक तरीकों की खेती (कन्वेन्शनल फार्मिंग) से हट कर टिकाऊ खेती का रास्ता चुना और इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

इस पुस्तिका की विषयवस्तु का इस शर्त के साथ बिना–रोक टोक के पुनर्मुद्रण और उसे उद्धृत किया जा सकता है कि इस स्रोत का उल्लेख किया जाए। फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ उस प्रकाशित सामग्री को पाने पर आभारी रहेगा, जिसमें इस रिपोर्ट का उल्लेख किया गया है।

इस पुस्तिका को पढ़ने के बाद आप अपने विचार हमारे साथ जरूर बांटें। आप हमें हमारे पते पर चिट्ठी भेज सकते हैं या फोन या ईमेल कर सकते हैं।

यह एक अभियान प्रकाशन है और निजी वितररण के लिए है!

विषयवस्तु

प्राक्कथन 4

भूमिका 6

पारिस्थितिकीय खेती क्या होती है? 11

– पारिस्थितिकीय खेती से लाभ 12

– उत्पादन में वृद्धि के लिए पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके 14

पारिस्थितिकीय खेतों से हमारे व्यावहारिक अनुभव : लाभों की प्राप्ति 16

– भूमि के उपजाऊपन में सुधार 17

– प्राकृतिक और जैविक चीजों की लागत द्वारा फसलों की रक्षा 19

– विविध और मुख्य फसल के बीच फसल उगाने (अंतर–फसलीकरण) के तौर तरीकों के फायदे 22

– सिंचाई सुनिश्चित करना 25

– खेती की विकसित और असरदार तकनीकें 28

– भूमि के अधिकार और खाद्य संप्रभुता 30

– वन उपज और खाद्य सुरक्षा 33

– विविध फसलों का उत्पादन 36

– खेत पर मुफ्त में उपलब्ध चीजों का उपयोग 38

– बेहतर कीमतें पाने के लिए रसायन–मुक्त खेती 40

– सूखे के वर्ष में लाभ 42

– बाजार के साथ जुड़ाव 44

– कृषि जैव–विविधता का संरक्षण और उससे संबंधित ज्ञान का विस्तार 47

निष्कर्ष : पारिस्थितिकीय खेती सबके लिए क्यों अच्छी है? 50

प्राक्कथन

देश की वर्तमान और भावी खाद्यान्न जरूरतों की पूर्ति के लिए नए तौर तरीकों से पैदावार बढ़ाने वाली खेती–प्रणाली के उदाहरणों को ढूंढ़ने के साथ–साथ पारिस्थितिकीय प्रणाली (इकॉसिस्टम) के कार्यों के स्वास्थ्य को बरकरार रखना और उन्हें बढ़ावा देना नीति निर्धारकों के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है। एम. ए. अल्टेयरी, एफ. आर. यून्स–मोन्झोत और पी. पीटरसन (2012) ने यह दर्शाने के लिए क्यूबा, ब्राजील, फिलीपीन्स और अफ्रीका की केस स्टडीज पेश की हैं कि किस प्रकार छोटी जोत के किसान कुशलता के साथ पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके (एग्रोइकॉलोजिकल प्रैक्टिसेज) अपना कर उत्पादनशील और गतिशील पारिस्थितिकीय खेती की दिशा में सफलता के उच्च कीर्तिमान कायम कर रहे हैं। इस पुस्तिका में दी गई भारत की केस स्टडीज छोटे एवं सीमांत किसानों के बारे में हैं और उनकी जोत लगभग 5 से 8 एकड़ तक की है। वे अपने परिवारजनों के साथ खेत पर काम करते हैं और इसमें किसी भी अन्य व्यक्ति को मजदूरी पर नहीं रखते। वे सिर्फ कुछ मौकों पर, अधिकतर फसल की कटाई के मामलों में, अपने साथी किसानों की मदद लेते हैं। इसके अलावा, इन किसानों की कहानियां भारत में आधुनिक तरीकों की खेती (कन्वेन्शनल फार्मिंग) से हट कर पारिस्थितिकीय तौर तरीकों वाली खेती की ओर मुड़ने को रेखांकित करती हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि इन किसानों में दो–तीन आदिवासी किसानों ने पहले कभी भी गैर–पारम्परिक तरीकों से खेती नहीं की थी। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों की ओर यह बदलाव छोटे एवं सीमांत दर्जे के किसानों का रुझान प्रकट करता है, जो कृषि पैदावार में जोखिम घटाना चाहते हैं।

इसके अलावा, यह सिलसिला इस प्रवृत्ति को भी जाहिर करता है कि छोटे एवं सीमांत किसान आधुनिक तरीकों की खेती के बढ़ते पारिस्थितिकीय और आर्थिक खतरों के बारे में पहले से कहीं अधिक जागरूक बन रहे हैं। यह नव–उदारपंथी नीतियों और मिट्टी एवं जल की बिगड़ती गुणवत्ता से उत्पादन पर पड़ने वाले नए प्रतिकूल एवं उभरते दुष्प्रभावों को भी इंगित करता है। इन किसानों ने सोच–समझ कर पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों और आर्थिक रूप से खेती के टिकाऊ तरीकों को अपनाया है। यह जानना बहुत उत्साहवर्द्धक है कि ये किसान अब समझ गए हैं कि महज अधिक उत्पादन के पीछे भागना सही नहीं है। चूंकि उनका अनुभव दर्शाता है कि पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों की बदौलत पोषक तत्वों और खाद्य विविधता में सुधार से उत्पादन बेहतर होता है, इसलिए इस सच्चाई के बारे में अन्य किसानों और नीति निर्धारकों को बतलाना आवश्यक है। इसी प्रकार, यह भी आशाजनक है कि उन्होंने उच्च गुणवत्ता वाली अधिक खाद्यान्न पैदावार पाने में सफलता पाई और जीवन निर्वाह के लिए उपभोग एवं भंडारण की आवश्यकता के अलावा एक हिस्सा बाजार में भी बेचा।

इस पुस्तिका में दी गई केस स्टडीज, जैसे– शून्य बजट (जीरो बजट), प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर), जैविक खेती, शून्य जुताई (जीरो टिलैज), वर्मीकम्पोस्टिंग, रसायनमुक्त खेती और पारिस्थितिकीय खेती के विभिन्न तौर तरीके अपनाने को भी दर्शाती हैं। मिट्टी और जल की गुणवत्ता बनाए और बचाए रखने का विचार ही किसानों को पारिस्थितिकीय और रसायन मुक्त खेती की तरफ प्रेरित कर रहा

है। वे रसायन–मुक्त खाद्य पदार्थों के प्रति आकर्षित होते हैं क्योंकि उनकी पैदावार से मिट्टी, जल और अन्य संसाधनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे विविध और बेहतर गुणवत्ता के खाद्यान्नों के उत्पादन को बल मिलता है। ये केस स्टडीज प्रेरणास्पद हैं क्योंकि इनसे चावल और गेहूं के विकल्प के रूप में स्थानीय एवं पारम्परिक फसलों, विशेषकर बाजरा, रागी आदि की विभिन्न किस्मों की पैदावार का महत्व उजागर होता हैं तथा खाद्यान्नों की फसलों में विविधता बनाए रखने पर जोर दिया जाता है।

यह भी एक आशाजनक संकेत है कि ये किसान भले ही स्थानीय बाजार की दर पर अपनी पैदावार बेचें, फिर भी टिकाऊपन के इतने ऊंचे स्तर को पाने में कामयाब रहे हैं। और, जिन लोगों ने बेहतर मूल्य दर पाने के लिए अपनी पैदावार की अन्य जगहों पर बिक्री की, उन्हें स्थानीय मूल्य की तुलना में थोड़ा अधिक मूल्य ही मिला। इसका स्पष्ट संदेश है कि ये मामले इसी बात की पुष्टि करते हैं कि छोटी जोत में खेती करना भी फायदेमंद है। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपना कर किसान पारिस्थितिकीय और आर्थिक रूप से खेती को टिकाऊ बना सकते हैं।

अंततः यह जिक्र करना महत्वपूर्ण है कि उन किसानों के प्रयासों के जरिए भारत में पारिस्थितिकीय खेती का विस्तार होता जा रहा है, जिनका मानना है कि इन तौर तरीकों से जमीन को उपजाऊ रखा जाए, जो पारिस्थिकीय खेती की पैदावार–वृद्धि की रणनीतियों के अनुकूल हैं, न कि अपने आपको खेती में इस्तेमाल होने वाली चीजों में बदलाव तक सीमित रखा जाए। चूंकि पारिस्थितिकीय खेती में जैविक खेती की सीमाओं के पार जाने की क्षमता है, इसलिए पारिस्थितिकीय खेती के दृष्टिकोणों के बारे में अनुसंधान पर अधिक संसाधन खर्च किए जाने चाहिए। सरकार द्वारा पारिस्थितिकीय खेती को समर्थन दिए जाने की आवश्यकता के बारे में नीति निर्धारकों को संवेदनशील बनाना बेहद अहम है। इन किसानों ने उन गैर–सरकारी संगठनों के साथ अपने संबंधों के चलते पारिस्थितिकीय खेती अपनाई, जिन्होंने इसके लिए उन्हें प्रेरित किया, प्रशिक्षित किया और उनके साथ मिल कर काम किया। ये गैर–सरकारी संगठन भूमि के अधिकार, पारिस्थितिकीय अधिकारों, खाद्य सुरक्षा एवं संप्रभुता, कॉरपोरेट द्वारा भूमि अधिग्रहण की खिलाफत, वन अधिकारों, महिलाओं के अधिकारों आदि जैसे विभिन्न सरोकारों से जुड़े हुए हैं।

हालांकि दुनिया के अनेक भागों में टिकाऊ खेती एक आंदोलन का रूप लेती जा रही है, फिर भी भारत में बहुत–कुछ किया जाना अभी बाकी है। ऊपर बतलाई गई विभिन्न वजहों के आधार पर पारिस्थितिकीय खेती का सिलसिला आगे बढ़ाने के लिए एक सामाजिक आंदोलन चलाने की भारी आवश्यकता है। इस पुस्तिका की विभिन्न केस स्टडीज में इन वजहों का स्पष्ट साक्ष्य पेश किया गया है।

– दिनेश अब्रोल
विजिटिंग प्रोफेसर, सेन्टर फोर स्टडीज इन साइंस पोलिसी, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी।
कन्वेनर, एग्रीकल्चर सब कमेटी, ऑल इंडिया पीपल्स साइंस नेटवर्क

भूमिका

दुनिया भर में किए गए अनेक अध्ययनों से यह साबित हुआ है कि आधुनिक खेती के तरीकों (कन्वेन्शल फार्मिंग मेथ्ड्स) की तुलना में पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके (एग्रोइकॉलोजिकल प्रैक्टिसेज) अधिक सफल हैं। यह एक बहुआयामी दृष्टिकोण है, जो किसानों के प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में उनके ज्ञान, जानकारियों और जीवन के तौर तरीकों पर आधारित है। अनेक वर्षों तक इसे पुरातन और 'आधुनिक प्रगति' के मुताबिक न ढला हुआ माना गया था। इसके चलते पारिस्थितिकीय खेती (एग्रोइकॉलोजी) लुप्तप्राय: हो गई थी, लेकिन अब यह एक जोरदार ढंग से वापस लौट रही है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए पारिस्थितिकीय खेती को उत्पादन और मुनाफे में वृद्धि के सबसे फायदेमंद तरीके के रूप में देखा जा रहा है।[1]

पारिस्थितिकीय खेती मूल प्राकृतिक चीजों में अपना ताना—बाना बुनती है। यह मिट्टी, बीज, समुदायों के पारम्परिक ज्ञान, खाद्य सुरक्षा, खाद्य संप्रभुता आदि सहित सभी लिहाज से फायदेमंद है। इसमें प्राकृतिक रूप से उत्पादित विविध खाद्य पदार्थों के सामाजिक—सांस्कृतिक परिवेश पर जोर दिया जाता है। लेकिन, बड़े पैमाने पर हुए कृषि (खेती) के उद्योगीकरण ने उसका रास्ता रोक दिया है। कृषि के उद्योगीकरण से पारिस्थितिकीय खेती के नष्ट होने का खतरा है क्योंकि वह मुनाफा कमाने, चुनिंदा खाद्य फसलों के उत्पादन और रासायनिक चीजों पर आधारित है। दुनिया भर की अनेक सरकारें एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियां रासायनिक चीजों, संकर बीजों, जीएमओ एवं एकल फसल पद्धति (मोनोकल्चर) को बढ़ावा दे रही हैं और प्राकृतिक संसाधनों को हड़प रही हैं। बंपर उत्पादन के नाम पर उपभोक्ताओं को लुभाने के लिए सब्सिडी और अन्य लाभ दिए जा रहे हैं। अतीत में हमने देखा है कि इस तरह के प्रयासों से नुकसान हुए हैं। पिछले सालों के दौरान मिट्टी, भूमि और जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों की स्थितियां बिगड़ी हैं। इससे जलवायु के क्रम (पैटर्न) में भी बदलाव आया है, जो अब एक बड़ी खतरनाक चुनौती बन गया है। इसलिए, यह अत्यंत आवश्यक है कि किसानों, विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों के लिए पारिस्थितिकीय खेती की नीतियां पुनः अपनाई जाएं। पारिस्थितिकीय खेती पर्यावरण के मुताबिक ढल कर की जाती है, अतः यह प्रकृति के साथ तालमेल बिठाते हुए की जाती है और इससे जैव—विविधता में भी वृद्धि होती है। इससे किसानों को न सिर्फ अधिक उपज, बल्कि बेहतर उपज भी मिलती है।

इस पुस्तिका में छोटे और सीमांत किसानों के लिए पारिस्थितकीय खेती के लाभों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। हमने यह समझने के लिए दूरदराज के इलाकों की यात्रा की कि पारिस्थितिकीय खेती करने वाले किसान क्या—क्या उगा रहे हैं, वे किस प्रकार उनकी पैदावार कर रहे हैं, बीजों की देसी किस्मों का संरक्षण कैसे कर रहे हैं, पोषक एवं स्वस्थ खाद्य पदार्थों का सेवन कैसे कर रहे हैं, किस प्रकार अपनी उपज की मात्रा बढ़ा रहे हैं और बाजार में उसे बेच कर लाभ कमा रहे हैं या नहीं। इस पुस्तिका के जरिए इन केस स्टडीज में मालूम किए गए तौर तरीकों को व्यापक रूप से किसानों के बीच पहुंचाने की कोशिश की गई है।

---

[1]अल्टिएरी, एम.ए., एग्रोकॉलोजी, स्माल फार्म्स एंड फूड सोवरेन्टी, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया एट बर्कले, मन्थली रिव्यू, 2009

ये स्थानीय तौर तरीके सोच या विकल्पों के सिर्फ तरीके नहीं, बल्कि समुदायों एवं जनता के ज्ञान और तौर तरीकों पर भी आधारित हैं। इनमें गहरी परख हैं, जिनको समुचित ढंग से अपनाया जाए तो किसानों एवं समुदायों को स्थानीय खाद्य पदार्थों को बढ़ावा देने, जलवायु परिवर्तन के मुताबिक अपने आपको बेहतर ढंग से ढालने और आमदनी बढ़ाने के लिए पैदावार की वृद्धि में भारी मदद मिल सकती है। पारिस्थितिकीय खेती छोटी जोत के किसानों के लिए एक बार फिर टिकाऊ तरीके से पैदावार में वृद्धि का सफल मंत्र साबित हुई है, जो खाद्य सुरक्षा, खाद्य संप्रभुता और पर्यावरण संबंधी संतुलन सुनिश्चित करती है।

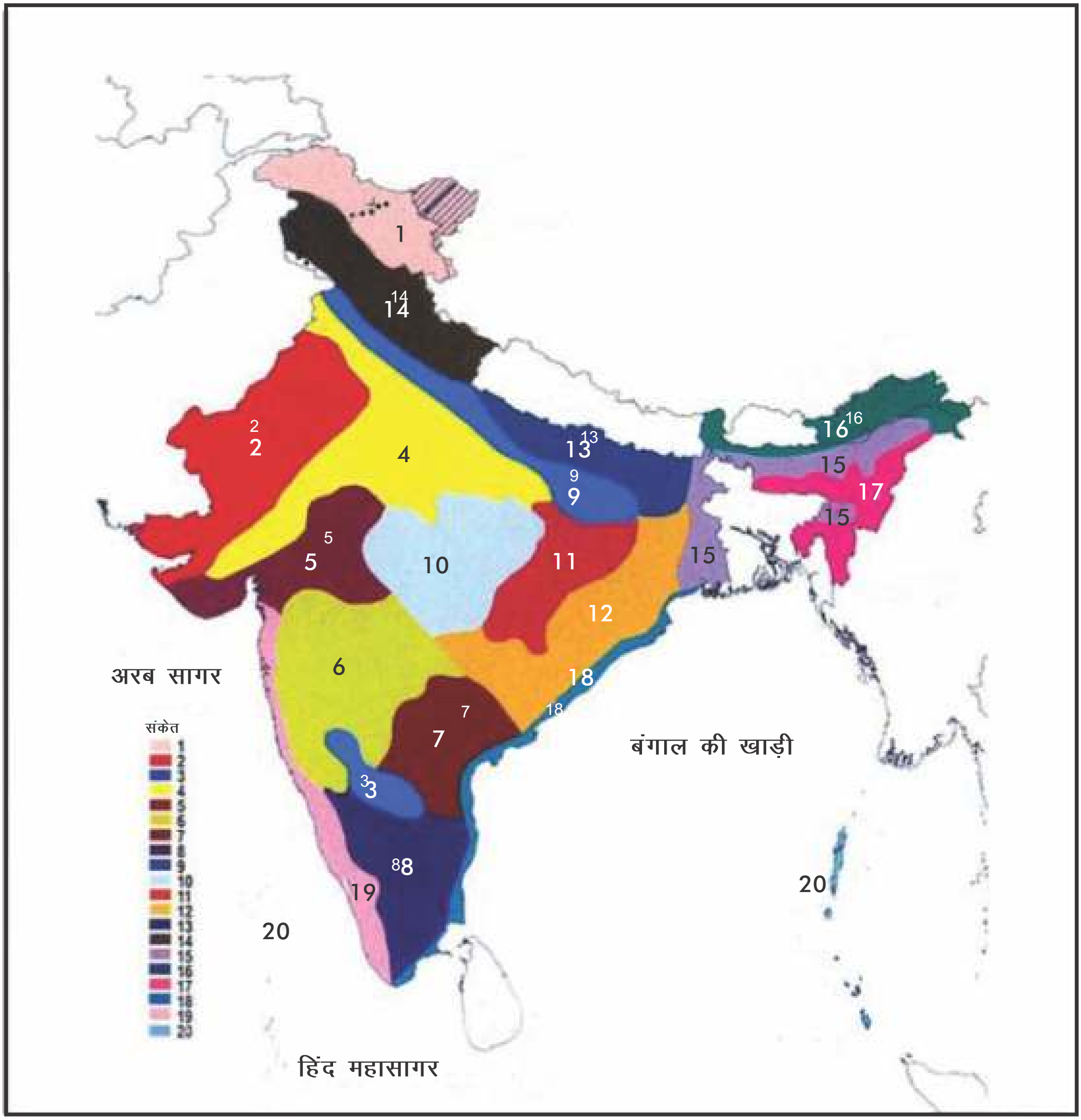

Source : *www.nih.ernet.in/rbis/india_information/ecological%20regions.htm*

भारत में पारिस्थितिकीय खेती के क्षेत्रों की प्रमुख खासियतें

पा.खे. क्षेत्र के नं.	पारिस्थितिकीय खेती के क्षेत्र	भौगोलिक इलाका (मि.हे.)	सकल फसल क्षेत्र (मि.हे.)	फिजियोग्राफी (भौगोलिक स्थिति)	वर्षा (मि.मि.)	उपज की अवधि (दिन)	प्रमुख फसलें
1.	खोखली मरियल मिट्टी वाला ठंडा शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	15.2 (4.7:)	0.07	पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र	150 से कम	800 से कम	सब्जियां, मोटे अनाज, गेहूं, चारा, जौ, दालें
2.	बंजर एवं खारी मिट्टी वाला गरम शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	31.9 (9.7:)	20.85	पश्चिमी मैदान एवं कच्छ प्रायद्वीप	300 से कम	1500–2000	बाजरा, चारा, दालें
3.	लाल एवं काली मिट्टी वाला गरम शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	4.9 (1.9:)	4.18	डक्कन का पठार	400–500	1800–1900	ज्वार, सूरजमुखी, कपास, मूंगफली, गन्ना
4.	कछारी मिट्टी वाला गरम अर्द्ध–शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	32.2 (9.8:)	30.05	उत्तरी मैदान एवं गुजरात के मैदानों सहित मध्य के पर्वतीय भूभाग	500–800	1400–1900	मोटे अनाज, गेहूं, दालें, मक्का, सिंचित कपास एवं गन्ना
5.	मझोली एवं गहरी काली मिट्टी वाला गरम अर्द्ध–शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	17.6 (5.4:)	11.04	मध्य (मालवा) के पर्वतीय भूभाग, गुजरात के मैदान एवं काठियावाड़ प्रायद्वीप	500–1000	1600–2000	मोटे अनाज, गेहूं, दालें
6.	खोखली एवं मझोली (सुप्त) काली मिट्टी वाला गरम अर्द्ध–शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	31.0 (9.5:)	25.02	डक्कन का पठार	600–1000	1600–1800	सिंचाई के तहत बाजरा, कपास, दालें एवं गन्ना
7.	लाल एवं काली मिट्टी वाला गरम अर्द्ध–शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	16.5 (5.2:)	6.19	डक्कन (तेलंगाना) का पठार एवं पूर्वी घाट	600–1000	1600–1700	सिंचाई के तहत मोटे अनाज, तिलहन, चावल, कपास एवं गन्ना
8.	लाल लूमी मिट्टी वाला गरम अर्द्ध–शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	19.1 (5.8:)	6.96	पूर्वी घाट (तमिलनाडु के ऊंचे भूभाग) एवं डक्कन का पठार (कर्नाटक)	600–1000	1300–1600	सिंचाई के तहत मोटे अनाज, दालें, तिलहन, (मूंगफली), गन्ना एवं चावल
9.	कछारी मिट्टी वाला गरम उप–नम (शुष्क) पारिस्थितिक क्षेत्र	12.1 (3.7:)	11.62	उत्तरी मैदान	1000–1200	1400–1800	चावल, गेहूं, अरहर, गन्ना, सरसों, मक्का
10.	लाल एवं काली मिट्टी वाला गरम उप–नम पारिस्थितिक क्षेत्र	22.3 (5.8:)	14.55	मध्य के पर्वतीय भूभाग (मालवा एवं बुंदेलखंड)	1000–1500	1300–1500	चावल, गेहूं, ज्वार, सोयाबीन, चना, अरहर

11.	लाल एवं पीली मिट्टी वाला गरम उप–नम पारिस्थितिक क्षेत्र	11.1 (4.3:)	6.47	पूर्वी पठार (छत्तीसगढ . क्षेत्र)	1200–1600	1400–1500	चावल, मोटे अनाज, गेहूं, अरहर, हरा चना, काला चना
12.	लाल एवं लैटेरिटिक मिट्टी वाला गरम उप–नम पारिस्थितिक क्षेत्र	26.8 (8.2:)	12.09	पूर्वी (छोटा नागपुर) पठार एवं पूर्वी घाट	1000–1600	1400–1700	चावल, दालें, बाजरा
13.	कछारी मिट्टी वाला गरम उप–नम (सीलनभरा) पारिस्थितिक क्षेत्र	11.1 (3.4:)	10.95	पूर्वी मैदान	1400–1600	1300–1500	चावल, दालें, गन्ना
14.	भूरे वन एवं पोडजोलिक मिट्टी वाला प्रति–नम (परह्यूमड) सहित गरम उप–नम से नम पारिस्थितिक क्षेत्र	18.2 (5.6:)	3.20	पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र	1600–2000	800–1300	गेहूं, मोटे अनाज, मक्का, चावल
15.	कछारी मिट्टी वाला गरम उप–नम से नम (सीलनभरा) पारिस्थितिक क्षेत्र	12.1 (3.7:)	8.99	बंगाल बेसिन एवं असम का मैदान	1400–2000	1000–1400	चावल, जूट, पौधारोपण फसलें
16.	भूरी एवं पर्वतीय लाल मिट्टी वाला गरम प्रति–नम पारिस्थितिक क्षेत्र	9.6 (2.9:)	1.37	पूर्वी हिमालयी क्षेत्र	2000–4000	1000 से कम	चावल, मोटे अनाज, आलू, मक्का तिल, झूम खेती आम बात है
17.	लाल एवं लैटेरिटिक मिट्टी वाला गरम प्रति–नम पारिस्थितिक क्षेत्र	10.6 (3.3:)	1.56	उत्तर–पूर्वी पहाड़ियां	1600–2600	1000–1100	चावल, मोटे अनाज, आलू, पौधारोपण, झूम खेती आम बात है
18.	तटवर्ती कछारी मिट्टी वाला गरम उप–नम से अर्द्ध–शुष्क पारिस्थितिक क्षेत्र	8.5 (2.6:)	6.12	पूर्वी तटवर्ती मैदान	900–1600	1200–1900	चावल, नारियल, काला चना, मसूर, सूरजमूखी, मूंगफली
19.	लाल, लैटेरिटिक एवं कछारी मिट्टी वाला गरम नम प्रति नम वाला पारिस्थितिक क्षेत्र	11.1 (3.6:)	5.70	पश्चिमी घाट एवं तटवर्ती मैदान	2000–3200	1400–1600	चावल, टैपियोका (कसावा) नारियल, मसाले
20.	लाल लूमी एवं रेतीली मिट्टी वाला गरम नम/ प्रति नम द्वीप का पारिस्थितिक क्षेत्र	0.8 (0.3:)	0.05	अंडमान एवं निकोबार द्वीप और लक्षद्वीप	1600–3000	1400–1600	चावल, नारियल, सुपारी, तेल–ताड़ (ऑयल पाम)

पारिस्थितिकीय खेती क्या होती है?

पारिस्थितिकीय खेती का मतलब उन तौर तरीकों से है, जो खेती को टिकाऊ और स्थानीय स्थितियों के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। इसका उद्देश्य पौष्टिक रूप से समृद्ध और रसायन–मुक्त फसलों का उत्पादन करना है। इस तरह की खेती पारिस्थितिकी प्रणाली का स्वास्थ्य बढ़ाने और उसे टिकाऊ बनाने में मददगार होती है, साथ ही रासायनिक कीटनाशकों, उर्वरकों और अन्य जीवाश्म ईंधनों (फोसिल फ्यूल्स) जैसी बाहरी लागत की चीजों पर निर्भरता घटाती है। इन बाहरी लागत की चीजों में अधिक ऊर्जा की खपत होती है, जिसका जीवाश्म ईंधनों पर भारी दबाव पड़ता है और नुकसानदायक उत्सर्जन होता है। ये चीजें स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए अत्यंत हानिकारक हैं क्योंकि इनमें रसायन और कृत्रिम संवर्धक (सिंथेटिक इनहेन्सर) होते हैं। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों में एक पारस्परिक लाभदायक ढंग से परस्पर–क्रिया कर स्वयं किसानों के खेत के संसाधनों और स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधों, वृक्षों, पक्षियों, कीड़ों और लघु जीवों (माइक्रोऑर्गेनिजम्स) का उचित उपयोग किया जाता है। इसके तौर तरीकों में जमीन की ऊपरी और भीतरी मिट्टी दोनों के अंदर जमीन एवं पर्यावरण का क्षमतावर्धन होता है। कीट के दबावों, खेती की चीजों की कीमतों, फसल की विफलताओं और जलवायु परिवर्तन से पर्यावरण एवं आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले बुरे प्रभावों का सामना करने में पारिस्थितिकीय खेती अत्यंत मददगार साबित होती है। इसके अलावा, यह फसल के अगले सीजन (चक्र) में भूमि, मिट्टी, फसल के उत्पादन और बचत की दृष्टि से लाभदायक है।

विश्व स्तर पर देखें तो पाएंगे कि छोटी जोत के किसान 25 प्रतिशत भूमि पर दुनिया के लिए 70 प्रतिशत खाद्यान्नों का उत्पादन करते हैं। लेकिन, विडम्बना यह है कि उनके पास न तो पर्याप्त भूमि और न ही बाजार की शक्ति है। वे दुनिया भर में अति–गरीब हैं और भूखे रहने वाले लोगों में उनकी आबादी 70 प्रतिशत है। पारिस्थितिकीय खेती अब न्याय पाने का एक सामाजिक आंदोलन बनती जा रही है, जो किसान समुदायों द्वारा यह तय करने के अधिकारों की पैरवी और उनका सम्मान करती है कि वे जिस फसल और तरीके को चाहें, उसकी उस ढंग से पैदावार करें। पारिस्थितिकीय खेती जनता के उन अधिकारों पर जोर देती है, जो खाद्य संप्रभुता और खाद्य सुरक्षा से संबंधित हैं।

पारिस्थितिकीय खेती किसानों, विशेष रूप से छोटे या सीमांत किसानों को उत्पादन में वृद्धि कर विभिन्न तरीकों से लाभ कमाने का दीर्घकालिक समाधान प्रदान करती है। आइए, हम अब यह समझने की कोशिश करते हैं कि किस प्रकार पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके न सिर्फ पर्यावरण के लिए फायदेमंद हैं, बल्कि किसानों की आमदनी और बेहतर स्वास्थ्य में भी योगदान देते हैं।

उत्पादन में वृद्धि और फसलों की किस्म : अफ्रीका के छोटे किसानों ने पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों पर अमल कर 3–10 सालों के भीतर दोगुनी से भी अधिक फसल की पैदावार करने में सफलता प्राप्त की है।[2] किसान जमीन के उपजाऊपन में वृद्धि, जलवायु परिवर्तन के मुताबिक ढालने एवं स्थानीय–देसी तरीके अपनाने और विविध फसलें उगाने के उद्देश्य से पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों का इस्तेमाल करते हैं। सीमित संसाधनों का अधिक गहन तरीकों से इस्तेमाल कर छोटे किसान अपनी प्रति यूनिट पैदावार पर लाभ कमा सकते हैं, जिससे उनके कुल मुनाफे में वृद्धि होती है। इन तौर तरीकों से उपज और उत्पादकता में वृद्धि भी सुनिश्चित होती है।

खाद्य सुरक्षा और अगले सीजन के लिए भंडारण : पारिस्थितिकीय खेती में बुआई के अगले सीजन के अलावा परिवार के खाद्य उपभोग के लिए भंडारण पर जोर दिया जाता है। किसान अपने परिवार के उपभोग के लिए भी खाद्यान्न उत्पादन करते हैं और इस प्रक्रिया में अपनी खाद्य जरूरतों की पूर्ति के लिए बाजार पर निर्भर नहीं रहते हैं। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाने वाले किसानों ने दर्शाया है कि उन्होंने आधुनिक तरीकों की खेती (कन्वेन्शल फार्मिंग) की तुलना में बेहतर खाद्य सुरक्षा, फसल की पैदावार वृद्धि

[2] *''एग्रोकॉलोजी एंड द राइट टू फूड'' ,यू.एन. स्पेशल रेपोर्टियोर ऑन राइट टू फूड*

और आहार–विविधता प्राप्त की है। इन तौर तरीकों के रासायनिक उर्वरकों से मुक्त होने के चलते खाद्य पदार्थ स्वस्थ और पोषक होते हैं। पिछली फसल कटाई से अपने बीज बचा कर किसान बाजार पर अपनी निर्भरता घटाते हैं। वे स्वयं बीजों का चयन करते हैं, इसलिए बाजार में उपलब्ध बीजों की तुलना में उनके पास बेहतर बीज होते हैं। ये बीज जलवायु परिवर्तन के मुताबिक भी ढले होते हैं क्योंकि वे स्थानीय और प्राकृतिक रूप से बने होते हैं।

बाजारों पर निर्भरता नहीं और कर्जों एवं किसान आत्महत्या जैसे मसलों पर काबू पाने से अधिक बचत : पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके छोटे किसान की आमदनी में महत्वपूर्ण बदलाव ला सकते हैं। आधुनिक तरीकों की खेती हरित क्रांति की प्रौद्योगिकी पर आधारित है और उसमें बाहरी चीजों की लागत पर अत्यधिक निर्भरता रहती है। यह पूंजी, भूमि, जल और रासायनिक संवर्धक जैसे हरेक मामले में संसाधन–प्रधान होती है। इनमें निवेश के लिए किसानों को कर्ज लेना पड़ता है। जबकि पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों में बाहरी लागत की चीजों (एक्सटरनल इनपुट्स) की जरूरत नहीं पड़ती। इसमें भूमि का आकार छोटा होता है, सिंचाई के तरीके नवोन्मेषी (इनोवेटिव) होते हैं और जैव–चीजों की बाहरी लागत नहीं आती क्योंकि ये स्वयं किसान के खेत के संसाधनों से बनती हैं या उनकी जरूरत नहीं पड़ती। यह पूंजी निवेश की दृष्टि से लगभग शून्य बजट के बराबर है। यदि फसल खराब हो जाती है तो भी बाहरी चीजों की लागत न होने के चलते किसान किसी कर्ज में नहीं रहता। दरअसल, पारिस्थितिकीय खेती के जरिए किसानों की आत्महत्या के मसले पर काबू पाया जा सकता है। जब कभी पैदावार होती है तो फसल उत्पादन की राशि मुनाफे के रूप में होती है और इस मॉडल में किसान अधिक बचत करते हैं।

आमदनी के अधिक अवसर : पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों में जैव–उर्वरकों के लिए पशुपालन और प्राकृतिक रूप से बनी उन चीजों के उपयोग पर जोर दिया जाता है, जो खेतों या घरेलू कचरे में पाई जाती हैं। इसका सीधा असर खेती में लागत घटने के रूप में होता है। इस प्रकार, किसान अपनी बचत का उपयोग पशुधन एवं अधिक भूमि खरीदने और सिंचाई संवर्धक प्रणालियों में निवेश में कर सकते हैं। पशुधन, मवेशी और मुर्गी–पालन (पॉल्ट्री) से किसानों को आमदनी के अतिरिक्त अवसर भी मिल सकते हैं।

खाद्य संप्रभुता : खाद्य संप्रभुता में लोगों के इस अधिकार पर जोर दिया जाता है कि वह अपनी पसंद के अनुसार खेती की पैदावार करे एवं भोजन खाएं, जो स्वस्थ एवं प्रत्येक व्यक्ति की पहुंच में होना चाहिए। स्थानीय किसानों का स्थानीय–देसी खाद्य पदार्थों एवं बाजार पर पहला अधिकार होना चाहिए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों या आयातित उत्पादों की तुलना में किसानों की उपज को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। लेकिन, जब खेतों पर पैदा किए गए खाद्य पदार्थों एवं बाजार की बात आती है तो बड़े पैमाने पर उद्योगीकृत खेती और व्यापार नीतियों के चलते मौजूदा अर्थव्यवस्था दोनों के बीच सामंजस्य नहीं बिठा पा रही है। छोटे किसानों के पास इसको बदलने की क्षमता है। उपजाने एवं भोजन संबंधी अपनी पसंद चुनने और स्थानीय खाद्य पदार्थों के चयन द्वारा अपने समुदायों एवं खेती के बारे में फैसले लेकर जनता अपने अधिकार को पुष्ट कर सकती है। खेती और खाद्यान्नों की पैदावार से दुनिया की खाद्य जरूरतों की पूर्ति की जा सकती है, लेकिन छोटे किसानों के जरिए खाद्य संप्रभुता खाद्य प्रणालियों को सक्षम बनाएगी, जिससे सबके लिए अच्छा स्वास्थ्य, न्याय और गरिमा सुनिश्चित होंगे। इस प्रणाली का नतीजा खेती के प्रत्येक पहलू, जैसे– भूमि, जल, बीज और आमदनी पर किसानों के नियंत्रण के रूप में सामने आएगा।

पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों द्वारा किसानों की खाद्य पैदावार का संवर्धन

हम अब पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों से छोटे एवं सीमांत किसानों को मिलने वाले फायदों की चर्चा करते हैं। आसान तकनीकों का इस्तेमाल कर किसान अपनी फसल के उत्पादन में वृद्धि और मिट्टी के संतुलन की बहाली के लिए निम्नलिखित चार्ट में दिए गए विविध तरीके अपना सकते हैं :

पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके	**फायदे**
संरक्षण खेती	जुताई न होने या न्यूनतम जुताई के बावजूद वायु संचारण, जल के प्रवेश सहित मिट्टी की संरचना में सुधार और जैविक पदार्थ सहित प्रतिधारण क्षमता।
मुख्य फसलों के बीच फसल उगाना (इंटरक्रॉपिंग) और खेत में विविध फसलें उगाना (पोलीकल्चर)	उस एकल भूखंड पर मिश्रित फसलों का होना, जहां जैविक रूप से पूरक किस्में एक साथ उगाई जाती हैं और उससे मिट्टी के पोषक तत्वों में सुधार आता है। यह कुशल तरीका है क्योंकि इससे कम रासायनिक चीजों का इस्तेमाल करना पड़ता है। इस प्रकार, खेती की लागत में कमी आती है और खेत का कुशल तरीके से उपयोग भी होता है। इसका नतीजा बेहतर कीट नियंत्रण के रूप में सामने आता है, जिससे फसल की उपज में स्थिरता आती है।
फसल रोटेशन (बदल–बदल कर फसल का उत्पादन) और जमीन को परती छोड़ना	इससे एक के बाद दूसरे सीजन की फसल में पोषक तत्वों का संरक्षण होता है और यह तरीका अपनाने पर कीट, बीमारियों एवं खरपतवार का जीवन चक्र बाधित होता है।
पेड़–पौधों की जड़ों को पत्तों–घास से ढकना (मल्चिंग एंड कवरिंग)	इससे मिट्टी का कम कटाव होता है और तापमान में कमी आने से पोषकता आती है। यह कीड़े पैदा होने के लिए उपयुक्त है। इस तरीके के जरिए जैविक रूप से कीट नियंत्रण भी होता है।
फसल–पशुधन का समन्वयन	इससे सूखा कचरे (बायोमास) में बढ़ोतरी होती है और पोषक तत्वों की अधिकतम रिसाइक्लिंग होती है। इसके अलावा, इससे झींगा मछली की खेती (एक्वाकल्चर), दूध की सप्लाई और दुग्ध उत्पादों के जरिए किसान परिवार के लिए आर्थिक फायदों के अन्य विकल्प खुलते हैं और उन्हें बाजार में बेचा जा सकता है।
पोषक तत्वों का समन्वित प्रबंधन	कम्पोस्ट, खेत में बने जैविक खाद और नाइट्रोजन–फिक्सिंग फसलों (नाइट्रोजन योगिकीकर फसलें) से रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल में कमी आती है या उनका बिल्कुल इस्तेमाल नहीं करना पड़ता।

जैविक प्रबंधन (कीट और खरपतवार का)	जैविक प्रबंधन दीर्घकालिक दृष्टि से कीट का प्रचलन घटाता है और रासायनिक उत्पादों के इस्तेमाल की तुलना में पर्यावरण एवं स्वास्थ्य संबंधी खतरों में कमी लाता है।
कुशल तरीके से वर्षा जल का संचयन	ऊर्जा एवं संसाधन–कुशल, लघु स्तरीय और सिंचाई के नए तरीकों का छोटे खेतों में इस्तेमाल किया जाता है, जिससे पानी या बड़ी ढांचागत सुविधाओं के खर्चों में कमी आती है।
स्थानीय संसाधनों का उपयोग और कचरे की रिसाइक्लिंग	इस तरीके के जरिए स्थानीय जलवायु के अनुसार ढला जाता है और बाहरी चीजों की लागत में कमी आती है। साथ ही, प्राकृतिक संसाधनों के पुनः इस्तेमाल से उन पर कम दबाव पड़ता है।
कृषि वानिकी	बहु–कार्यात्मक पौधे और पेड़ उगाने से नाइट्रोजन–फिक्सेशन (नाइट्रोजन–योगिकीकरण) होता है, भू–कटाव में कमी होती है और अधिक ठंडे तापमान के जरिए मिट्टी के उपजाऊपन में सुधार आता है।
बेहतर प्रबंधन के लिए समग्र भू–प्राकृतिक डिजाइन बनाना	यदि हवाओं, कीट एवं कीड़ों से रक्षा के लिए खेत की बाड़ के स्थान पर समुचित पेड़ और झाड़ियां उगाई जाएं तो यह भूमि के उपयोग का एक बहुत उपयोगी तरीका हो सकता है।

नोट : *ऊपर दिए गए पारिस्थितिकीय खेती के कुछ तौर तरीकों की चर्चा पारिस्थितिकीय खेती पर अगली निर्देशिका–* **पारिस्थितिकीय एवं टिकाऊ खेती की विभिन्न पद्धतियां : किसानों के लिए मार्गदर्शिका** *में की गई है और उन्हें केस स्टडीज के जरिए समझाया गया है।*

पारिस्थितिकीय खेतों से हमारे व्यावहारिक अनुभव : लाभों की प्राप्ति

अतीत ने हमें दर्शाया है कि संकर बीज (हाईयील्ड), कृत्रिम उर्वरक और रासायनिक चीजें जमीन के पोषक तत्वों एवं जैविक जीवन को छीन लेती हैं, जिसका दुष्परिणाम कम उपज के रूप में सामने आता है। पिछले एक दशक में एक छोटे कदम के रूप में ही सही, लेकिन इन तौर तरीकों को क्रमिक ढंग से त्यागा जा रहा है। छोटे और सीमांत किसानों के खेतों में ऐसे अनेक तौर तरीकों का सफलतापूर्वक अपनाने का सिलसिला जोर पकड़ रहा है, जहां रसायन–मुक्त खेती के पुराने तरीके की ओर लौट कर अतीत की गलतियों से छुटकारा पाया जा रहा है। यहां दी गई केस स्टडीज कोई जादुई समाधान पेश नहीं करतीं, लेकिन वे छोटे एवं सीमांत किसानों के व्यावहारिक अनुभव को सही ठहराती हैं। अधिकतर मामलों में किसान खेती के आधुनिक तौर तरीकों के बजाए पारम्परिक तरीकों के संरक्षण की ओर मुड़ रहे हैं, बाजार से कोई रासायनिक चीजें नहीं खरीद रहे हैं, स्थानीय एवं प्राकृतिक रूप से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग कर रहे हैं और इस प्रक्रिया में आर्थिक लाभ भी कमा रहे हैं। पारिस्थितिकीय खेती की पद्धतियां और तौर तरीके खेत–विशेष की स्थितियों के मुताबिक विकल्प प्रदान करते हैं। ये निकटस्थ सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरण संबंधी पृष्ठभूमि से अत्यंत प्रभावित और बने हैं, जिसमें वे प्रचलित हैं। ये स्थानीय विकल्प जनता और समुदायों के ज्ञान पर आधारित हैं। इन्होंने खाद्य उत्पादन प्रणालियों को बढ़ावा दिया है, जो जलवायु परिवर्तन के मुताबिक ढालते हैं, जैव–विविधता एवं जल का संरक्षण करते हैं, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं और महिला किसानों का भी संशक्तीकरण करते हैं।

भूमि के उपजाऊपन में सुधार

केरान्डीगुडा गांव। बिस्समकटक खंड। रायगडा जिला। ओड़ीशा

भूमि की तैयारी : *नाइट्रोजन–फिक्सेटिंग पौधे। मिश्रित खेती। पशुधन और घरेलू कचरा। बाहरी लागत की कोई चीजें (उर्वरक एवं कीटनाशक) नहीं*

मिर्च एवं मोटे अनाज की खेती

मल्चिंग : जमीन को घास पत्तों से ढकना

लोकनाथ नौरी एक भूमिहीन किसान है, जो खेती के जरिए अपने परिवार के दस सदस्यों का गुजर–बसर कर रहा है। उसने कुछ सालों तक अपने डेढ़ एकड़ के खेत पर बीटी कपास की फसल पैदा की। उसने बाजार में रासायनिक उर्वरक एवं अन्य चीजें खरीदने पर एक बड़ी धनराशि खर्च की थी। लेकिन, सूखा पड़ने से उसकी पूरी फसल चौपट हो गई। जब घर में खाने को कोई अन्न न था तो उसके परिवार ने खरपतवार खाकर जीवन चलाया। लेकिन, अब लोकनाथ ढ़ाई एकड़ के खेत में साल भर दालों, तिलहन और सब्जियों के अलावा ज्वार–बाजरा जैसे मोटे अनाजों की 56 किस्मों की खेती करता है। उसके पास अब पर्याप्त अनाज हैं और ''सरप्लस'' उपज (अधिशेष उपज) बाजार में बेचता भी है। वह विभिन्न आसान तरीके अपनाता है, जिसमें उपज–वृद्धि के उद्देश्य से खरपतवार, मिश्रित खेती और कम्पोस्ट खाद के जरिए पोषक तत्वों के संवर्धन के लिए धनराशि चुकानी नहीं पड़ती।

दक्षिण ओड़ीशा के रायगडा जिले में अधिकांशतः लैटराइट मिट्टी (मृदा) है। इस मिट्टी में जैविक अंश की मात्रा बहुत कम होती है और इससे कम उपजाऊपन रहता है। इस क्षेत्र के अन्य लोगों की तरह नौरी ने बीटी कपास में निवेश किया था। क्षेत्र में यह सर्वाधिक लोकप्रिय नकदी फसल है। सूखा पड़ने से उसे अपनी फसल से हाथ धोना पड़ा। उसने बाजार में बीटी कपास के बीज, कीटनाशक और उर्वरक खरीदने पर जो धनराशि खर्च की, उसका भी काफी नुकसान हुआ। उसने तय किया कि वह अब कभी भी नकदी फसलों की खेती नहीं करेगा और अपने परिवार के उपभोग के लिए अनाज की खेती करेगा। चूंकि लैटराइट मिट्टी ज्यादा उपजाऊ नहीं होती और उसने ऊपर से रासायनिक चीजों का इस्तेमाल किया था, इसलिए उसको पता था कि उसे उसके पोषक तत्वों में वृद्धि का पूरा प्रयास करना पड़ेगा। उसने वे कुछ आसान तरीके अपनाए, जो उसके क्षेत्र में अन्य किसान बीज बोने से पहले भूमि की तैयारी के लिए अपनाते हैं।

पहला कदम एक कम्पोस्ट खड्डा खोदना था। उसने खाद बनाने के लिए साढ़े तीन फुट गहरा खड्डा खोदा। उसने उसमें गाय के गोबर और मूत्र के साथ नाइट्रोजन फिक्सेटिंग पौधे, सूखे एवं गीले पत्ते–पत्तियां, धान की

भूसी, ज्वार–बाजरा जैसे मोटे अनाज की विभिन्न किस्में और उनके बीज डाले। इसके अलावा, घरेलू कचरा भी डाला। बीजों की बुआई से कुछ दिनों पहले उसने खेती की जमीन पर इस खाद के 60 प्रतिशत हिस्से का इस्तेमाल किया और कुछ दिनों के लिए अपने मवेशियों को भी खेत पर छोड़ दिया। उसने बुआई के बाद 15 दिन के अंतराल पर फूल पैदा होने के चरण में बाकी बचा खाद खेत में डाला। वह प्रत्येक बार फसल रोटेशन का पालन करता है और मिश्रित खेती भी करता है।

नौरी कुछ खरपतवारों के महत्व पर भी जोर देता है। वह बताता है– *''अधिकतर लोग यह सोच कर खरपतवार को उखाड़ फेंकते हैं कि ये मिट्टी के पोषक तत्वों को खींचते हैं। लेकिन, वे नहीं जानते हैं कि ये खरपतवार मिट्टी में बहुवांछित और आवश्यक नाइट्रोजन में नई जान डालते हैं।''*

हरी–भरी पत्तियों वाला एक खुशबूदार पौधा

इसके लिए *लेन्टाना कामारा* (राईमुनिया) या सरन्ड़ नामक खरपतवार अत्यंत उपयोगी है। नौरी की फसल खरपतवार के नजदीक पैदा होती है। ज्वार–बाजरा जैसे मोटे अनाज की अधिकतर किस्मों के पैदा होने के लिए ज्यादा पानी की जरुरत नहीं पड़ती। नौरी वर्षा के बारे में समझने के लिए मौसम के पैटर्न को ध्यान में रखता है और उसके बाद ही अपनी फसल का चयन करता है। वह अपनी अधिकतर फसलों को घास–पत्तों से भी ढकता (मल्चिंग) है ताकि लंबी अवधि तक वर्षा के पानी और ओस की नमी बने रहे। इससे मिट्टी के कटाव पर नियंत्रण रहता है और मिट्टी में पोषक तत्व भी बने रहते हैं। कीट के हमलों के उपाय के रूप में वह स्थानीय रूप से पाए जाने वाले सागो पॉम (साबूदाना) के वृक्ष के तनों का इस्तेमाल करता है। इस वृक्ष से तने को काट कर उसका खेत में पौधारोपण किया जाता है। यह कीटों पर काबू पाने में अत्यंत असरदार साबित हुआ है। वह अपने खेत में रासायनिक चीजों के इस्तेमाल के बारे में बहुत चिंतित था, लेकिन अब वह खुश है कि उसके खेत की जमीन समृद्ध और पोषक तत्वों से भरी हुई है।

नौरी के जीवन में कई बार ऐसा समय भी आया, जब घर में खाद्यान्न न होने के चलते उसके परिवार को खरपतवार खाकर गुजारा करना पड़ा था। लेकिन, अब स्थिति भिन्न है। वह मुस्करा कर कहता है– *''जब मैंने खेती में रासायनिक चीजों का इस्तेमाल बंद करने का फैसला किया तो स्थिति बदल गई। रासायनिक चीजें जोखिमभरी थीं, उन्होंने मिट्टी के पोषक तत्व छीन लिए थे और उन पर बहुत वित्तीय खर्च करना पड़ता था। लेकिन, पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों के तहत मैं अब लंबी और छोटी अवधियों में ज्वार–बाजरा जैसे मोटे अनाज की 56 किस्मों की पैदावार करता हूं। अब मेरे घर में खाने, भंडारण और बाजार में बेचने के लिए पर्याप्त खाद्यान्न हैं।''*

वह तिलहन, दालें, धान और सब्जियां उगाता है। वह स्थानीय बाजार में अपनी उपज भी बेचता है। पिछले साल उसने बाजार में 80 किलो बाड़ा बाजरा

(सन्वा), 70 किलो ज्वार, कंद, मूल, सब्जियां, मूंग एवं उड़द, चना आदि बेचे। साल भर में उपज की विभिन्न किस्मों के चलते वह नियमित रूप से उन्हें बेच पाता है। वह नमक को छोड़ कर बाजार से कोई अन्य चीज नहीं खरीदता। अधिकतर समय नकद के बिना, नमक और बीजों के आदान–प्रदान से काम चलता है।

वह अब खेती में रसायनों के खतरों और जमीन एवं खाद्य पदार्थों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों से बखूबी वाकिफ है। वह प्राकृतिक विधियों के साथ बेहतर उपज के लिए मिट्टी के संरक्षण और संतुलन की भरपाई पर जोर देता है। वह स्वयं द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले तौर तरीकों को बढ़ावा देने में सक्रिय रहता है। वह बताता है– *''अधिकतर ये स्थानीय तरीके हैं, पर नकदी फसल और लंबे समय तक लगातार एक ही फसल उगाने के चलते प्रचलन में नहीं थे। ये न सिर्फ आर्थिक रूप से फायदेमंद हैं, बल्कि मिट्टी में सुधार लाने में भी मददगार हैं। मतलब यह है कि यह मिट्टी अधिक पैदावार करेगी। मैं अब पैदावार की मात्रा में वृद्धि के लिए मिट्टी की गुणवत्ता पर अधिक ध्यान दूंगा।''*

नौरी को आशा है कि अन्य लोग भी अधिक एवं विविध उपज, पोषक खाद्य पदार्थों में पोषकता–वृद्धि और पर्यावरण में संतुलन के लिए पारस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाएंगे।

प्राकृतिक और जैविक चीजों की लागत द्वारा फसलों की रक्षा

हरियाणचेरी गांव। चेनेककोठपल्ली खंड। अनंतपुर जिला। आंध्र प्रदेश

फसल की सुरक्षा और पैदावार–वृद्धि : *जैव–कीटनाशक। सूक्ष्मजीवी उर्वरक। मिट्टी में नई जान डालना*

श्रीनिवासुलु आंध्र प्रदेश में भारत के दूसरे सर्वाधिक सूखा–संभावित अनंतपुर जिले का एक छोटा किसान है। वह अपने दो भाइयों के साथ मिल कर दो एकड़ के खेत में पानी की अधिक जरूरत वाले धान की पैदावार करता है। वह प्रत्येक फसल चक्र में न्यूनतम 30 बोरी (50 किग्रा. प्रति बोरी) धान पैदा करता है। वह प्राकृतिक खेती के तौर तरीके अपनाता है और रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का इस्तेमाल नहीं करता है।

पहले प्रत्येक सीजन में कीटों की नई प्रजाति श्रीनिवासुलु की फसल पर हमला करती थी। वह इस बीमारी

पर नियंत्रण एवं प्रबंधन के लिए बाजार से रासायनिक कीटनाशकों को खरीदता था। अनेक बार इन कीटनाशकों का असर नहीं होता तो उसे बाजार से फिर दूसरी किस्म के रासायनिक कीटनाशक खरीदने पड़ते थे। गौरतलब है कि कीट नियंत्रण के वायदे के साथ इन कीटनाशकों की बिक्री शुरू हुई थी। लेकिन, समय बीतने के साथ कीट नियंत्रण या उनकी समाप्ति में कीटनाशक असरहीन होने लगे। इनके निरंतर उपयोग के साथ अनेक कीट प्रजातियां विकसित होने लगीं और वे अपनी उच्च जन्म दर के चलते कीटनाशकों एवं रसायनों की विशेष किस्मों की प्रतिरोधी बनने लगीं। इस प्रकार, कीट प्रजातियों के विकास का क्रम आगे बढ़ता गया। कीट–जनित बीमारियों को रोकने के लिए विभिन्न किस्मों के कीटनाशकों की जरूरत पड़ने लगी। श्रीनिवासुलु ने महसूस किया कि प्रत्येक फसल के साथ कीटनाशकों की अधिक मात्रा की जरूरत होती थी। ये कीटनाशक कीटों की समाप्ति में मददगार नहीं थे और फसल की उपज भी 30 प्रतिशत घट गई थी। उसके परिवार के सामने विकल्प यह था कि वह अपनी उपज को बाजार में बेच दे या फिर उसे अपने गुजर–बसर के लिए घर में रखे। अगले सीजन की बुआई या लाभ, दोनों की दृष्टि से यह सही नहीं था।

जैविक खेती करने वाले अन्य किसानों की मदद से श्रीनिवासुलु ने प्राकतिक तरीकों से तैयार होने वाले कीटनाशक आजमाने का फैसला किया। गौरतलब है कि रासायनिक चीजों की बढ़ती कीमतों के चलते छोटे किसानों ने खेती के प्राकृतिक तरीके अपनाना शुरू किया था। उनके पास रासायनिक चीजें खरीदने के लिए पर्याप्त धनराशि नहीं होती थी। श्रीनिवासुलु अपने खेत के प्रत्येक एकड़ के लिए रासायनिक चीजों पर लगभग 8,000 रु. खर्च करता था, लेकिन फसल बिगड़ने के चलते उसे यह राशि भी नहीं मिलती थी। प्रतिवर्ष उपज में कमी के साथ उसने पाया कि महंगे कीटनाशकों एवं उर्वरकों के इस्तेमाल के बावजूद मिट्टी की गुणवत्ता में बिगाड़ आया है। उसने यह भी सुन रखा था कि किसान इन रासायनिक चीजों को पीकर आत्महत्या कर रहे हैं। रसायनों के उपयोग से खाद्य पदार्थों के जरिए हमारे शरीर में उनके प्रवेश को लेकर उसको चिंता सताने लगी। तब से उसने खेती के रसायन–मुक्त तरीके अपनाने का फैसला किया।

उसने स्थानीय रूप से उपलब्ध वावी पत्तों (स्वाद में कड़वे), गोमूत्र और जल से प्राकृतिक पीड़नाशक (इनसेक्टिसाइड) तैयार करना शुरू किया। ये पत्ते पानी में उबाले जाते हैं और बाद में गोमूत्र में मिलाए जाते हैं। इस पानी को ठंडा करने के बाद सत्व (एक्सेट्रेक्ट) को सामान्य पानी में 1:14 लीटर के अनुपात में मिलाया जाता (1 लीटर सत्व और 14 लीटर पानी) है। पेट्रोल–चालित एक छोटे प्रेशर स्प्रेयर की मदद से इस मिश्रण का छिड़काव किया गया। अधिक तेज खुराक के तौर पर नीम के पत्तों का उपयोग कर भी यही किया गया। इसके बाद श्रीनिवासुलु ने कीट नियंत्रण के लिए किसी रासायनिक कीटनाशक के उपयोग की जरूरत महसूस नहीं की। रासायनिक उर्वरकों का इस्तेमाल बंद करने के लिए उसने प्राकृतिक रूप से उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग पुनः किया। उसने गुड़ और मछली के बेकार हिस्से (पंख को छोड़ कर) का एक मिश्रण बनाया और सूर्य की सीधी किरणों से बचा कर उसे रखा। 10 दिनों तक उसे लगातार हिला कर रखने और भंडारण के बाद उसने पानी के साथ

उसका छिड़काव किया। इससे न सिर्फ उसकी फसल की सघनता बढ़ी, बल्कि मिट्टी के रूप (टेक्सचर) में भी सुधार आया। पहले उसके गांव में इन तरीकों को नहीं अपनाया जाता था, लेकिन आशाजनक नतीजों के चलते अब अन्य किसान इनका अनुसरण कर रहे हैं। यह उनके लिए बहुत लाभदायक तरीका है क्योंकि इसमें मुफ्त में उपलब्ध कच्ची सामग्री या घरेलू कचरे का उपयोग किया जाता है। मतलब यह है कि महंगी रासायनिक चीजें नहीं खरीदनी पड़तीं और खेती की लागत में कमी आने से बचत होती है। श्रीनिवासुलु के मामले में प्रति फसल 16,000 रु. की बचत भी होती है।

इसने उसका अन्य लाभदायक रास्ता खोला। उसने इस धन का निवेश एक बोरवेल लगाने में किया, जिसकी पहले उसकी हैसियत नहीं थी। अब वह वर्षा पर निर्भर नहीं रहा है।

वह बताता है– *''पहले मैं बाजार की चीजों और वर्षा पर निर्भर था। खेती में प्राकृतिक तरीके अपनाने के साथ चीजें बदल गई हैं। मेरे पास अपनी फसल उगाने के लिए पानी रहता है। अब हरेक सीजन में मैं 30 बोरी धान (50 किग्रा. प्रति बोरी) की पैदावार करता हूं। उपज बढ़ी है और जैव–कीटनाशकों से हानि न होने से यह उपज निरंतर हो रही है। हम अपने उपभोग के लिए उपज के पर्याप्त भंडारण में सक्षम हैं और बाजार में उसे बेच भी पाते हैं।''*

सुनिश्चित सिंचाई का श्रीनिवासुलु जैसे छोटे किसानों के जीवन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। इस साल वर्षा नहीं हुई है। बोरवेल लगवाने और स्वनिर्मित प्राकृतिक कीटनाशकों के उपयोग की बदौलत उसका खेत सूखे और जलरहित खेतों के बीच एकमात्र हरा–भरा भूखंड है। अब उसके खेत के लिए साल भर पानी उपलब्ध रहता है। इससे वह विभिन्न फसलें उगाने और अपनी आमदनी में महत्वपूर्ण वृद्धि कर पाया है। अब वह मूंगफली की पैदावार भी करता है, जो उसके क्षेत्र की एक अन्य नकदी फसल है।

यकीन करें या न करें : श्रीनिवासुलु और उसके पड़ोसी ने एक ही समय पर धान की खेती शुरू की थी। इसके नतीजे स्पष्ट रूप से यहां देख सकते हैं।

श्रीनिवासुलु और उसके परिवार के लिए सब–कुछ अच्छा हो गया है। उत्पादन में वृद्धि के साथ वे अपने उपभोग के लिए भंडारण और बाजार में उसकी बिक्री कर पाते हैं। अब वह घरेलू कचरे और मवेशियों के गोबर (कैटल वेस्ट) की कम्पोस्टिंग से खेत का खाद भी बना रहा है। उसने अपने खेत में उच्च सघनता एवं अधिक उत्पादन वाले क्षेत्रों को चिन्हित किया और अगली सीजन (फसल–चक्र) के लिए वहां से बीज का चयन करता है। वह बाजार से खेती की कोई भी चीजें खरीदने से पूरी तरह स्वतंत्र रहना चाहता है क्योंकि इससे उसका हर बार मुनाफा बढ़ेगा। उसको यकीन है कि अन्य किसान उसके अनुभव से सबक लेंगे और न सिर्फ अधिक स्वस्थ फसलों, बल्कि आर्थिक फायदों के लिए भी पारिस्थितिकीय खेती की ओर जाएंगे।

विविध और मुख्य फसल के बीच अन्य फसल उगाने (अंतर–फसलीकरण) के तौर तरीकों के फायदे

सिंधेघेट्टा गांव। कृष्णाराजापेटे खंड। मांड्या जिला। कर्नाटक

फसल का चयन : *कृषि जैव–विविधता का संरक्षण। विविध फसलों की खेती। जैव–चीजें*

कर्नाटक के सिंधेघेट्टा गांव का एस.जे. मुद्दुकुमार पिछले 25 साल से अपने चार एकड़ के खेत में गन्ने की खेती कर रहा था। उसके गांव के आसपास कई छोटी चीनी मिलें होने की वजह से इस क्षेत्र में गन्ना सर्वाधिक नकदी फसल है। वह सिर्फ 20–25 टन गन्ना पैदा कर पाता और इसकी खेती से फायदा नहीं होता था। इसका कारण बाजार में तीव्र प्रतिस्पर्धा और खेत में बाहरी लागत की कई चीजों पर ज्यादा धन का निवेश था। कई बार उसे कीटों के कारण अपनी फसल के एक बड़े हिस्से से हाथ धोना पड़ता और रासायनिक चीजों के इस्तेमाल से मिट्टी की गुणवत्ता भी लगातार खराब होती जा रही थी। उसके परिवार के 9 सदस्य पलायन के कगार पर थे और अपनी जमीन बेचने का इरादा भी कर लिया था। लेकिन, वह पलायन को लेकर आश्वस्त नहीं था क्योंकि उसे सिर्फ खेती का काम करने आता था। उसने सुन रखा था कि पलायन करने वाले उसके जैसे लोगों के लिए शहरी जीवन बहुत कठिन होता है। तब, उसे पारिस्थितिकीय खेती के बारे में पता चला, जिसमें विविध और मुख्य फसल के बीच अन्य फसल उगाने (अंतर–फसलीकरण) पर जोर दिया जाता है। वह कुछ उन किसानों से मिला और देखा, जो मैसूर के आसपास के इलाकों में पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाकर खेती कर रहे थे। उसने 2005 में खेती के पारिस्थितिकीय तौर तरीके अपनाने शुरू कर दिए। अब उसके चार एकड़ के खेत में अन्य स्थानीय सब्जियों के साथ 40–50 टन गन्ने की पैदावार होती है। यह विविध और बीच की फसल उगाने के तौर तरीके अपनाने से संभव हुआ, जिससे मिट्टी के स्वास्थ्य और उत्पादकता में सुधार आया।

पानी की अधिक जरूरत वाला गन्ना और धान मुद्दुकुमार के गांव की मुख्य नकदी फसलें हैं। हरित क्रांति के बाद से किसान प्रत्येक फसल में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का नियमित उपयोग करते रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में मिट्टी के उपजाऊपन में बिगाड़ और फसल उत्पादन में कमी चिंताजनक मसले बन गए हैं। मुद्दुकुमार को बताया गया था कि रासायनिक उर्वरक मिट्टी में पोषक तत्व बढ़ाते हैं, जिससे मिट्टी के उपजाऊपन और पौधे के विकास को बढ़ावा मिलता है। लेकिन, उसकी जमीन पर रासायनिक उर्वरकों के

विपरीत असर दिख रहे थे। वह जीवंतहीन लगने लगी। उसने पाया कि एक या दो साल के भीतर धान की फसल के पौधे में पाए जाने वाले केकड़े की प्रजाति भी लुप्त हो गई है। रासायनिक चीजों, सीमित जल संसाधनों और कड़ी मेहनत के बावजूद उसकी प्रत्येक फसल की पैदावार बहुत कम थी।

अपने एकल संकर गन्ने के उत्पादन के लिए उसने स्थानीय पत्तों से हर्बल कीटनाशक तैयार किए। मिट्टी के रूप (टेक्सचर) में सुधार के लिए उसने गाय के गोबर एवं मूत्र, गुड़ और दालों से बना एक सूक्ष्मजीवी मिश्रण तैयार किया। ये सभी उसके खेत पर उपलब्ध थे क्योंकि अपने परिवार के जीवन निर्वाह के लिए उनको उगा रहा था। वह मिट्टी में नाइट्रोजन के लिए बॉयोडीजल पौधे, जैसे पोन्गमिआ या करन्ज और विभिन्न किस्मों की दालों के पौधे भी रोपने लगा। वह गन्ने के पौधों के बीच प्याज, मिर्ची और अनेक स्थानीय सब्जियों की खेती करने लगा। सूखे के वर्ष में भी उसे सिर्फ गन्ने की फसल का नुकसान पहुंचा और अन्य फसलों की सामान्य पैदावार हुई। गन्ने के बीच स्थानीय सब्जियों को उगाने की बदौलत उसके पास खाने को सब्जियां थीं, जिनकी उपज के लिए कम पानी की जरूरत पड़ती है। उसने अपनी खेती के तौर तरीके को बदलते पर्यावरण के प्रकोप के प्रतिकूल पाया। इसमें उसे कम या अधिक वर्षा, दोनों स्थितियों में एक निश्चित उपज मिली।

वह खुशी से बताता है– *''जमीन का वही टुकड़ा बिना किसी रासायनिक चीज के अधिक उपज पैदा कर रहा है। मैंने विविध और एक से अधिक फसलों के तरीके अपनाए, जिनके लिए समान नमी की जरूरत पड़ती है। बेहतरीन नतीजों के लिए हमेशा एक कम कद की फसल के साथ अधिक लंबी फसल का रोपण करना बेहतर रहता है। ऐसे में सूखे या किसी प्राकृतिक आपदा के चलते फसल खराब हो जाए तो भी एक निश्चित मात्रा में पैदावार जरूर होती है।''*

वह खेत में हरे पत्ते–पत्तियां बिछाने (मल्चिंग) और कीड़ों के लाभ भी बताता है। गन्ने के खेत में हरेक चौथे दिन पानी की तराई की जाती है। लेकिन, वह यह तरीका नहीं अपनाता। फिर भी, पत्ते–पत्तियां बिछाने के कारण उसका खेत स्वस्थ रहता है। सूखे के साल को याद कर वह कहता है– *''मल्चिंग से कम सिंचाई की जरूरत पड़ती है क्योंकि हरे पत्ते–पत्तियां ढकने से वाष्पीकरण (इवेपोरेशन) की रोकथाम होती है और मिट्टी में नमी बनी रहती है। यह तापमान भी कम रखता है, जो मिट्टी में सूक्ष्मजीवियों और मित्र–कीड़ों के पैदा होने के लिए उपयुक्त है।''* वह इससे भी बहुत खुश है कि उसके खेत और आसपास के इलाकों में मित्र–कीड़ों और

पौधों की लुप्त हो गईं कुछ प्रजातियां पुनः लौट रही हैं। इससे जैव–विविधता के संरक्षण को बल मिलता है क्योंकि विभिन्न प्रजातियों की मौजूदगी अधिक समृद्ध मिट्टी और स्वास्थ्यवर्धक प्राकृतिक वातावरण को दर्शाती है।

मिटटी के लाभदायक : जमीन में मौजूद केंचुए

इससे पहले उसने टमाटर की खेती की और रासायनिक चीजों और कीटनाशकों पर 30 हजार रु. खर्च किए थे। इससे उसे कम आर्थिक लाभ हुआ और वह यह भी सोचता रहा कि क्या यह स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थ है। जब उसने पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाए तो बेहतर अनूकूलन के लिए स्थानीय बीजों का उपयोग किया ताकि बेहतर पैदावार के लिए किसी भी बाहरी चीज की लागत की जरूरत न पड़े। जलवायु परिवर्तन के मुताबिक अपने आपको ढालने के लिए स्थानीय बीज और फसलें बेहतर रहती हैं। मुख्य फसल के बीच दूसरी फसलें उगाने और प्राकृतिक तौर तरीकों से खेती करने में मिट्टी का उपजाऊपन तेजी से बढ़ता है। वह प्राकतिक शाकनाशकों (हरबिसाइड्स) को बना कर उनका फसल पर छिड़काव करता है, जो बाजार की तुलना में सस्ते होते हैं। अब उसका सालाना गन्ना उत्पादन 50 टन है। साथ ही, अपने परिवार के उपभोग और बाजार में बिक्री के लिए उसके गन्ने के खेत में सब्जियां भी मिलती हैं।

वह आगे बताता है– *''खेती में अधिकतम फायदों के लिए मैं पहले बाहरी लागत की चीजों पर निर्भर रहता था। जबकि सभी चीजें खेत के भीतर से ही आनी चाहिए। कथित हरे कचरे को रिसाइकिल किया जाना चाहिए और उसका खेती में इस्तेमाल किया जाए। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके देसी फसल की किस्मों एवं स्वास्थवर्धक खाद्य पदार्थों को बढ़ावा देते हैं और मिट्टी को सांस लेने और उपजाऊ बनाने में मददगार होते हैं। हम उन अन्य लोगों से बातचीत की कोशिश करते हैं, जो खेती के पारम्परिक तौर तरीके छोड़ना चाहते हैं और उन्हें नतीजे दिखलाते हैं। नतीजतन, स्थानीय अर्थव्यवस्था मजबूत होती है और पलायन भी रूकता है।''*

सिंचाई सुनिश्चित करना

सिंचाई के तरीके : *सिरिगुडा गांव। गुडारी खंड। रायगडा जिला। ओड़ीशा*

सिंचाई के तौर तरीके : *मल्चिंग (पत्ते–पत्तियों से ढकना)। छोटी नहरें। खेत में मेड़ें बनाना। वर्षा जल का संचयन। भूमिगत जल को रिचार्ज करना। खेत के तालाब*

सुमानी झरिया अपने परिवार के 10 सदस्यों के भोजन के लिए पर्याप्त अनाज पैदा नहीं कर पाती थीं। पहाड़ी ढलानों पर खेती करके उसकी सीमित पैदावार ही होती थी। उसकी जमीन पर पानी की नियमित सिंचाई सबसे बड़ी समस्या थी। उसके दो एकड़ के खेत में वर्षा से एक साल में सिर्फ एक फसल पैदा होती थी। सूखे के दौरान कुछ भी पैदा नहीं होता था। उसके गांव के अन्य किसान भी इसी तरह की समस्याओं का सामना कर रहे थे। उन्होंने सामूहिक कार्य के जरिए इस स्थिति को बदलने का निश्चय किया। सभी परिवारों ने मिल–कर कच्ची नहर (मड कैनाल) बनाना शुरू किया, जिसे निकटवर्ती नदी की बहती धारा को उनके खेतों से जोड़ा गया। अब इस कच्ची नहर के जरिए उनके खेत में साल भर लगातार पानी पहुंचता है। इस नहर और अन्य छोटे खड्डों में वर्षा का पानी एकत्र होता है एवं नीचे की ओर बहता है और उससे भूमिगत जल स्तर भी ऊपर उठ गया है। यह कच्ची नहर बारहमासी बहती है और गांव के लोग अपने खेत में सिंचाई कर पाते हैं।

ओड़ीशा में रायगडा जिले के काशीपुरा खंड ने कई बार विपत्तिजनक समय देखा है। उन्होंने कुपोषण, भूख से मौतों, जल की अविश्वसनीय स्थितियों से लेकर घोर गरीबी को झेला हैं। इस आदिवासी इलाके में जंगल और भूमि से संबंधित अधिकारों के काफी मसले हैं। ये चिंताएं संरक्षण और सुरक्षा को लेकर है, जो राज्य सरकार द्वारा जारी नियमों से पैदा हुई हैं। खेती एक जोखिम–भरा विकल्प है क्योंकि अधिकतर लोग भूमिहीन हैं या उनके पास बहुत छोटी भूमि का पट्टा है। सिरिगुडा गांव की लगभग 60 वर्षीय सुमानी झरिया आदिम झरिया जनजाति की है, जो पहाड़ी ढलानों पर झूम खेती (शिफ्टिंग कल्टिवेशन) करती है। वह और उसका 10 सदस्यीय परिवार अपने जीवन निर्वाह के लिए खेत में काम करता है। एक ऐसा भी समय था, जब वे अपने उपभोग के लिए सिर्फ रागी और मिर्चियां उगाते थे। वह कोई अन्य चीज नहीं उगा पाती थीं और बाजार में खरीदने के लिए उसके पास आमदनी नहीं थी। कई सालों तक पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाने पर अब झरिया के परिवार की स्थिति बहुत अच्छी हो गई है। वह अब एक छोटी–मोटी व्यापारी हैं।

सिरिगुडा गांव ने भूखमरी से संघर्ष के लिए मिल–जुल कर पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपना कर विभिन्न समस्याओं पर काबू पाया। पहले कदम के रूप में ग्रामवासियों ने अपने गांव में एक छोटा बीज एवं अनाज समूह स्थापित किया। प्रत्येक परिवार ने बीज बैंक में बीज दिए। इसका नियम आसान था– बीज उधार लेने वाले लोगों को तीन गुनी मात्रा में बीज लौटाना पड़ता था। बाकी आपूर्तियां खेत से की जाती थीं। ग्रामवासियों ने एक कम्पोस्ट खड्डा खोदा और उसमें गाय का गोबर, नीम के पत्ते, गौमूत्र और खाद्य पदार्थों का कचरा डाला। उसे लगभग तीन महीने तक खेत की मिट्टी से ढका गया और उसके बाद यह प्राकृतिक खाद खेत में डालने के लिए तैयार था। खाद्य सुरक्षा के लिए अन्य कदम के रूप में मुख्य फसल के बीच अन्य फसल उगाने की पद्धति शुरू की गई। सिर्फ एक ही फसल की उपज करना जोखिमभरा विकल्प था और उससे मिट्टी में पोषक तत्वों की शक्ति कम हो जाती है। मिश्रित खेती से सिर्फ एक साल में झरिया को फसल को बेहतर बनाने में काफी मदद मिली। उसके सामने एक बड़ी समस्या जल की सप्लाई थी। पूरा गांव भी यह समस्या झेल रहा था। पहले वे वर्षा से सिर्फ एक फसल को सींच पाते थे। लेकिन, सूखे के सालों में उसकी भी हानि होती थी।

अपने खेत के खड्डे के पानी के रास्ते में खड़ी हुई झरिया

उनके गांव के नजदीक एक जलधारा बहती थी। लेकिन, उसे उनके खेतों तक लाने का कोई साधन नहीं था। ग्रामीणों ने इस जल को लाने के लिए एक कच्ची नहर (मड कैनाल) के निर्माण की योजना बनाई। युवा और बुजुर्ग लोगों ने मिल कर अपने खेत के औजारों से खड्डा खोदा। इस प्रकार, जलधारा से उनके खेतों तक पानी पहुंचा। इस खड्डे में वर्षा जल एकत्रित होता है और उससे भूमिगत जल का स्तर भी बढ़ता है। जब वर्षा न हो, तब भी इस खड्डे में साल भर पानी जमा रहता है और उसकी खेतों में सप्लाई होती है। इससे झरिया के खेत में साल भर पानी मिलता है और अब वह जल के अभाव को लेकर चिंतित नहीं रहतीं। उसने अपने खेत में वर्षा के पानी के संचय के लिए और भी खड्डे बनाने की सोची है ताकि ज्यादा पानी मिले और नमी बनी रहे।

यह महिला किसान संतोषपूर्वक बताती हैं– *''मैं अपने खेत में अनेक सब्जियां और फल उगाती हूं। अब हम अपना खुद का कम्पोस्ट बनाते हैं और मुफ्त में पानी भी मिलता है। मेरे पोते–पोतियों को हमारी तरह भुखमरी के दुर्दिन नहीं देखने पड़ेंगे और भोजन के लिए स्वाथ्यवर्धक खाद्य पदार्थ मिलेंगे। अब मेरे पास खाने और बेचने के लिए बहुत–कुछ है।''*

अतिरिक्त आमदनी : झरिया के खेत पर आम के पौधे

झरिया रागी के अलावा पालक, टमाटर, लहसुन, फूलगोभी, कटहल, बैंगन, पपीता, फलियां, मूली, केला, मिर्च, आलू और आम की 6 किस्मों की पैदावार करती हैं। वह काशीपुर के स्थानीय बाजार में नियमित

रूप से बैंगन, आलू, टमाटर, कंद और रतालू बेचती हैं। इसके अलावा, पिछले साल उसने आम के छोटे पौधों (बालवृक्ष) का भंडारण और बिक्री शुरू की। उसके खेत में आम की 6 किस्मों के 800 छोटे पौधे हैं और इस साल 3,000 छोटे पौधे बेच भी चुकी हैं। अब उसके परिवार के पास खाने को साल भर पर्याप्त खाद्य पदार्थ रहते हैं। गांव के खाद्यान्न और बीज बैंक में दो साल तक का गांव के सभी 44 परिवारों के लिए भंडारण किया गया है। उनकी योजना सूखे जैसी प्राकृतिक आपदा या जलवायु परिवर्तन की उन स्थितियों में इस स्टॉक के उपयोग की है, जब फसल चौपट हो जाए।

झरिया आगे कहती हैं– *''प्रत्येक दो सीजन की फसल के बाद नए अनाज का रोटेशन किया जाता है। हम जो भी उगाते हैं, उसमें से अपने लिए काफी–कुछ बचा कर रखते हैं। यदि प्रत्येक गांव यह कर पाए तो हमें कभी भी भुखमरी और कुपोषण की समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों ने हमारी जिंदगी संवारी है। यदि इस तरह की खेती से हमारे दिन पलटे हैं तो अन्य लोगों का भविष्य भी बेहतर बनेगा। यही हमारा विश्वास है।''*

खेती की विकसित और असरदार तकनीकें

सोहदीह गांव / हरनौत खंड / नालंदा / बिहार

खेती की तकनीकें : *वर्मीकम्पोस्ट / स्थानीय बीज / दोहरी कतार में पौधारोपण*

फोटो : धनंजय कुमार, जिला कृषि अधिकारी, नालंदा

राकेश कुमार को अपने पिता से विरासत में तीन एकड़ का एक खेत मिला था। खेत के छोटे आकार और वर्षा पर निर्भरता से वह गेहूं और धान की खेती नहीं कर पाता था। उसने रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की मदद से सभी प्रकार की सब्जियां उगाने पर ध्यान केंद्रित किया। वह प्रति हेक्टेयर 500 क्विंटल आलू पैदा कर लेता था। उसके बाद उसने 2009 में पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाने शुरू किए। आज राकेश कुमार अपने खेत में प्रति हेक्टेयर 1,088 क्विंटल आलू की पैदावार करने का विश्व रिकॉर्ड रखता है। उसने प्रति हेक्टेयर 660 क्विंटल प्याज उत्पादन का विश्व रिकॉर्ड भी कायम किया है। इसका श्रेय वह स्थानीय बीजों, वर्मीकम्पोस्टिंग और खेती की विकसित तकनीकों के मेल को देता है। इस खेती के मुनाफे से उसने एक एकड़ जमीन और खरीद ली है। अब वह अपने घर में बने बीज अन्य किसानों को बेचता है और अपनी बीज किस्म– ''श्री बिहार संस्कार'' का बांग्लादेश में निर्यात भी करता है।

राकेश का परिवार पीढ़ियों से खेती करता रहा है। उसके दादा और बाद में उसके पिता ने उसे अगले चक्र की खेती और बीज बचाने के बारे में सिखाया। वे रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशक खरीद कर उनका इस्तेमाल करते थे और खेती के लिए वर्षा पर अत्यधिक निर्भर रहते थे, जबकि राकेश ने अपने कदम आगे बढ़ा कर उसे अपने लिए बदल दिया है।

इससे पहले वह यूरिया एवं डी.ए.पी. का इस्तेमाल करता था और कीटों को मारने के लिए डाइथेन एवं यूमिगेन्ट्स (धूमक) जैसे रसायनों का इस्तेमाल करता था। इसके बाद, पांच साल पहले उसने रसायनों का इस्तेमाल घटाने का फैसला किया ताकि मिट्टी के स्वास्थ्य के साथ समझौता न हो। पहले साल में उसने केंचुओं, सब्जियों के कचरे और गाय के गोबर से एक वर्मीकम्पोस्ट यूनिट (इकाई) बनाई। उसने अपने आधे एकड के खेत में केंचुओं की खाद (वर्मीकम्पोस्ट) का इस्तेमाल किया। जब उसे गुणवत्ता में बेहतर नतीजे मिले तो उसने पूरी तरह से पारिस्थितिकीय खेती की ओर मुड़ने का फैसला किया। अब उसके पास वर्मीकम्पोस्ट की 10 यूनिटें हैं। उनकी तैयारी अवधि में प्रतिदिन पानी की हल्की तराई की जाती है। वह बुआई से एक दिन पहले इस खाद को खेत में छिटता है। यह तरीका मिट्टी को छिद्रिल बनाता है और बहुत कम पानी की जरूरत पड़ती है। इससे हर बार फायदा होता है और मिट्टी में पोषक तत्व बढ़ते हैं। जबकि

रासायनिक खाद से प्रत्येक बार उनकी अधिक मात्रा का इस्तेमाल करना पड़ता है। राकेश बताता है– *''अब मेरी मिट्टी में किसी प्रकार के रसायन नहीं हैं। पहले की तरह मिट्टी बेजान नहीं है। कम निवेश के बावजूद कोई कीट नहीं हैं। इससे मुझे बहुत ज्यादा धन बचाने में मदद मिली है।''*

राकेश अपने बीज स्वयं बनाता है। इससे उसके उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। वह अपनी उपज से बीज बचाता है ताकि वे स्थानीय हों और जलवायु परिवर्तन के मुताबिक बेहतर ढंग से ढल जाएं। उन्हें सुखाया जाता है और उनका एक हवादार स्थान में भंडारण किया जाता है। उनका एक साल तक इस्तेमाल किया जा सकता है। इससे वह किसी अन्य पर निर्भर नहीं है और उत्पादन के लिए अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित होती है। उसे किसी अन्य से बीज खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती। वह अपने बीजों को गांव और उसके आसपास के अन्य लोगों के साथ बांटता है। उसने अपने घर के बने प्याज के बीजों का ''श्री बिहार संस्कार'' नाम रखा है। इनका बांग्लादेश में निर्यात किया जाता है।

राकेश द्वारा अपनाया गया एक अन्य दिलचस्प तरीका आलू का दोहरी कतारों में पौधारोपण करना है। जब ये पौधे नजदीक में उगते हैं तो पत्तों का समूह बनने से प्राकृतिक मल्चिंग (फसल पर पत्तों का बिछना) हो जाती है। यह सूर्य की रोशनी और खरपतवार की वृद्धि को रोकता है। इससे स्थान का ज्यादा उत्पादनशील उपयोग हो पाता है और यह छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह उत्पादन की कई गुना वृद्धि में मददगार होता है।

इन किसान–हितैषी आसान तकनीकों को अपनाने के द्वारा राकेश अपने छोटे खेत से अधिक उत्पादन प्राप्त कर रहा है। उसने अधिक मुनाफा कमाया है तथा उसका एक और एकड़ जमीन खरीदने में उपयोग किया है। वह आलू, प्याज, भिंडी, लौकी की विभिन्न किस्मों, फूलगोभी, बैंगन के पौधों, पालक, कद्दू और कई अन्य सब्जियों की पैदावार कर रहा है। प्रत्येक फसल में उसकी पैदावार पिछली फसल की पैदावार से अधिक होती है। उसे खेती में इस्तेमाल होने वाली कोई भी चीज बाजार से नहीं खरीदनी पड़ती है और वह घर में बने बीजों की बिक्री से अधिक धन की बचत कर रहा है। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों ने दर्शाया है कि उनसे छोटे खेतों में उत्पादन बढ़ाना और मुनाफा कमाना बहुत आसान है।

वह खुशी से कहता है– *''उत्पाकता बढ़ी है और खेती की चीजों की लागत घटी है। सब्जियां गुणवत्ता में बेहतर और मात्रा में अधिक होती हैं। पौधे बीमारी–रहित हैं और उससे उत्पादन में न्यूनतम डेढ़ गुना वृद्धि करने में सफलता मिली है। इसके अलावा, मिट्टी के उपजाऊपन में भी सुधार आया है और उत्पादित खाद्य पदार्थ मनुष्यों एवं जानवरों के लिए स्वास्थ्यवर्धक हैं।''*

भूमि के अधिकार और खाद्य संप्रभुता, तमिलनाडु

सामूहिक खेती : *महिला किसान। भूमि के अधिकार। खाद्य सुरक्षा। खाद्य संप्रभुता*

पचपन वर्षीय और तीन बच्चों की मां शशिकला तमिलनाडु के वेल्लोर की दलित किसान हैं। खेत पर मजदूरी करने वाले उसके पति की पांच साल पहले मौत हो गई थी। शशिकला ने जीवन भर प्रतिदिन 60 रु. जितनी कम मजदूरी पर अन्य लोगों के खेतों में काम किया है। उसकी सारी मजदूरी खाद्य पदार्थों को खरीदने में चली जाती थी। उसके पास अपने पांच सदस्यीय परिवार का गुजारा चलाने के लिए कभी भी पर्याप्त साधन नहीं रहे थे। भुखे रह कर गुजारा करना एकमात्र तरीका था। तभी उसकी मुलाकात तमिनाडु में कार्यरत गैर–मुनाफा आधारित एक महिला स्वंयसेवी समूह **'तमिनाडु वुमेन्स कलेक्टिव'** *से हुई। शशिकला ने उसके सम्मेलनों और प्रशिक्षण में हिस्सा लिया। उसने वहां पारिस्थितिकीय तौर तरीकों के जरिए सामूहिक खेती के बारे में सीखा। अब वह साझा जमीन पर पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाती हैं। इसके बाद उसकी जिंदगी संवर गई है। पिछले साल उसके सबसे छोटे बच्चे ने स्कूल जाना शुरू किया। उसके एक कमरे के घर में स्टॉक किए गए रागी, दालें, फलियां और अन्य मोटे अनाज हैं, जिससे न्यूनतम छह महीने तक भोजन की जरूरतें पूरी होंगी। अब उसे बाजार से खाद्य पदार्थ खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती। एक सरकारी योजना की मदद से उसके पास चार बकरियां और एक बैल है। भुखमरी के दिनों को पीछे छोड़ते हुए वह अब खुश हैं और उसके बच्चे पोषक भोजन कर रहे हैं। वह गेहूं या धान के बजाए स्थानीय मोटे अनाजों की पैदावार करना पसंद करती हैं क्योंकि वे अधिक पोषक होते हैं, उसमें कम संसाधन लगते हैं और वे मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए बेहतर हैं।*

शशिकला और उसके गांव की अन्य 11 दलित महिला किसान मिल–जुल कर एक एकड़ के खेत में साझा काम करती हैं। वे मिल कर तय करती हैं कि किस खाद्यान्न की पैदावार की जाए और जैव–उर्वरक भी तैयार करती हैं। इन 11 महिलाओं में से कुछ शशिकला की तरह विधवा हैं, कुछ को उनके पति ने छोड़ दिया है और कुछ अविवाहित हैं, जो अपने अभिभावकों के साथ रहती हैं। देश की बहुसंख्यक महिला किसानों की तरह इनमें से किसी के पास स्वयं के मालिकाना हक की जमीन नहीं है। लेकिन, स्वयं और अपने परिवार के गुजारे के लिए उनके पास पर्याप्त खाद्यान्न हैं। भूमिहीन होने के बावजूद उन्होंने मिल कर एक समूह में काम करने की बदौलत खाद्य सुरक्षा प्राप्त की है।

ये महिलाएं तमिलनाडु के वुमेन्स कलेक्टिव की एक हिस्सा हैं। वे एक कार्यक्रम के तहत एकजुट हुईं, जिसमें

उन्होंने अपने गांव में और उसके आसपास उस जमीन की तलाश की, जहां खेती नहीं होती थी। उन्होंने एक स्वयं सहायता समूह की मदद से वहां प्रारम्भिक धनराशि से खेती करना शुरू किया। वे खेती नहीं करने वाले भूमि मालिकों और सरकारी अधिकारियों से मिलीं। उनसे अप्रयुक्त भूमि लीज पर देने का अनुरोध किया। सामूहिक खेती के पीछे उनका उद्देश्य न सिर्फ खाद्य सुरक्षा पाना था, बल्कि पारिस्थितिकीय खेती को अपनाने के जरिए रसायन–मुक्त और स्थानीय स्वास्थ्यवर्धक खाद्यान्नों की पैदावार भी सुनिश्चित करना था। उन्होंने पारम्परिक फसलों को उगाने का फैसला किया, जो उनके सीमित संसाधनों की दृष्टि से अधिक उपयुक्त था। वे अपने लिए स्थानीय खाद्य फसलों की पैदावार पर सहमत हुईं। उन्होंने देसी बाजरा जैसे मोटे अनाज की किस्मों की पैदावार की, जो पोषक एवं सूखा–प्रतिरोधी होती हैं और अधिक लोकप्रिय चावल या गेहूं की तुलना में उन्हें उगाना बहुत आसान है।

उपरोक्त वुमेन्स कलेक्टिव शशिकला जैसी महिलाओं के सशक्तीकरण और उन्हें अपने अधिकारों के बारे में जागरूक बनाने का काम करता है। वह स्थानीय स्वशासी संस्थाओं में महिलाओं की अधिक भागीदारी पर बल देता है, उन्हें राजनीतिक हिस्सेदारी के लिए प्रेरित करता है और खाद्य सुरक्षा तथा संप्रभुता से संबंधित बहुकार्यात्मक एवं टिकाऊ खेती के तरीकों के अधिकारों की दिशा में काम करने की पैरवी करता है। अपने अधिकारों की जानकारी के जरिए इन महिलाओं को राज्य सरकार की एक विशेष योजना के बारे में पता चला, जिसके तहत सीमांत एवं छोटे किसानों को पशुधन प्रदान किया जाता है। अब उनमें से अनेक के पास चार बकरियां और एक बैल हैं।

शशिकला बताती हैं– *''मैं एक भूखंड पाकर बहुत खुश हूं, जहां हम मिल–जुल कर काम करते हैं और यह तय करते हैं कि किसकी पैदावार की जाए। हम सभी को जहर–मुक्त खाद्य पदार्थों को उपजाने, उसे खाने और अपने परिवारों को खिलाने पर गर्व है। यदि हमारे द्वारा उपजाया गया खाद्यान्न स्वास्थ्यवर्धक हैं तो यह हमारे और अपने बच्चों के खाने के लिए भी स्वास्थ्यवर्धक होगा।''*

शशिकला का सामूहिक खेती समूह प्राथमिक रूप से जीवन निर्वाह की जरूरतों की पूर्ति पर ध्यान केंद्रित करता है और उपज पर्याप्त रूप से बचने पर उसे बेचता है। उपज का एक–तिहाई हिस्सा खेत के मालिक को दिया जाता है। एक–तिहाई हिस्सा अगली फसल के बीज के रूप में रखा जाता है। बाकी हिस्सा समूह के सदस्यों के बीच बांटा जाता है और यदि पर्याप्त पैदावार हो तो गांव के अन्य परिवारों के साथ भी उसे बांटा जाता है। यह समूह इस प्रक्रिया की पारदर्शिता के लिए इसका हिसाब–किताब भी रखता है। बाजार से कुछ भी नहीं खरीदा जाता और इससे वे वित्तीय निवेश की दृष्टि से पूरी तरह स्वतंत्र बन गई हैं। इस प्रकार, वे कर्ज लेने से बची रहती हैं। इससे शहरों की ओर पलायन पर भी लगाम लगी है। जब गांव में खाद्य सुरक्षा हो तो किसी भी परिवार को दूरदराज के शहरों में जाने की जरूरत नहीं पड़ती है।

सामूहिक खेती के इस सफर में अनेक चुनौतियां भी रही हैं। खेती के लिए जमीन मिलना एक बहुत बड़ी समस्या है। जमीन की अत्यधिक कमी है क्योंकि जमीनों का एक बड़ा हिस्सा विकास के नाम पर वाणिज्यिक

रियल्टर (कॉमर्शियल रियल्टर) को बेचा गया है और इससे खेती के क्षेत्र में भारी कमी आई है। वेल्लोर में टैनरी उद्योग (चर्मशोधक कारखाने) जमीन गटक रहे हैं और भूमिगत जल में प्रदूषण पैदा कर रहे हैं। इसलिए, सामूहिक खेती के सदस्यों को खेती के लिए बंजर जमीन तलाशनी पड़ती है। अधिकतर बार उन्हें निम्न गुणवत्ता की जमीन मिलती है। लेकिन, वे जमीन को तैयार करने एवं फसल संवर्धन के लिए विभिन्न चीजें अपनाती हैं। वे हर्बल पीड़नाशकों (हर्बल इनसेक्टिसाइड्स) और प्राकृतिक रूप से उपलब्ध कच्ची सामग्रियों का इस्तेमाल करती हैं। पशुधन के गोबर एवं मूत्र से ''जीवामृतम'' या पारम्परिक जैविक उर्वरक तैयार किए जाते हैं। यहां तक कि मुफ्त में उपलब्ध नीम या अन्य कड़वे स्वाद के पत्तों से कीटनाशक बनाए जाते हैं। बिना किसी मशीनरी के इन मिश्रणों का खेत में इस्तेमाल किया जाता है। ये संगठन या किसान समूह बारिश पर अत्यधिक निर्भर हैं। वे स्थानीय फसलों की देसी किस्मों को उगाते हैं, जिसका प्रकृति के साथ अधिक सामंजस्य बैठता है। जब बारिश देर से आती है या कम होती है तो ये महिला किसान खेती के नए तरीके अपनाने की कोशिश करती हैं और उन फसलों और सब्जियों की पैदावार करती हैं, जिनके लिए पानी की बहुत कम जरूरत पड़ती है।

अन्य महत्वपूर्ण मसला महिलाओं को किसान के रूप में मान्यता का है, जबकि वे खेती के प्रत्येक पहलू में भाग लेती हैं। महिलाएं खाद्य उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। 80 से भी ज्यादा प्रतिशत महिलाएं खेती का काम करती हैं। वे बुआई से लेकर फसल की कटाई, उसे एकत्र करने, बीजों की साज–संभाल, पशुधन की देखभाल और पानी लाने के काम करती हैं। खेती में पुरुषों की भूमिका जुताई, कीटनाशक के इस्तेमाल एवं बाजार में खेती के उपकरणों की खरीद और उपज बेचने तक सीमित है। महिलाएं कृषि उत्पादन में रीढ़ के समान है, फिर भी उन्हें औपचारिक रूप से पूर्णरूपेण किसान नहीं माना जाता। उन्हें खेत के मजदूर या सहायक की तरह माना जाता है। यह औपचारिक मान्यता नहीं होने से महिला किसान सरकार द्वारा दिए जाने वाले ऋण, मुआवजे और राहत का लाभ नहीं उठा पातीं।

तमिलनाडु के पंद्रह जिलों में रहने वाली लगभग 60,000 महिलाएं आज सामूहिक खेती के इस मॉडल को अपना रही हैं। इनमें से अधिकतर दलित महिलाएं हैं और वे महिलाओं के अधिकारों एवं किसानों से जुड़े मसलों पर उन्हें संगठित करने में जुटी हुई हैं। इन्होंने समझा है कि खेती एक अलग–थलग मसला नहीं है और उन्हें खाद्य सुरक्षा के मसलों के साथ भूमि हड़पने और प्रदूषण के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद करनी होगी। वे औद्योगिक प्रदूषण के खिलाफ धरना–प्रदर्शन कर अभियान चला रही हैं और विभिन्न सार्वजनिक सभाओं एवं स्कूलों में वायु–जल–भूमि प्रदूषण, हमारी खाद्य श्रृंखला में विषैले तत्वों के प्रवेश करने और जल की कमी के बारे में चर्चा कर रही हैं।

वेल्लोर जिले के महिला किसान समूह की एक सदस्य मेरी बताती हैं– *''किसी समूह में मिल–जुल कर काम करना फायदेमंद होता है। हम खेती करने के दौरान एक–दूसरे से बहुत–कुछ सीखते हैं। इसने हमें अपने अधिकारों को लेकर जागरूक किया है और मानसिक संतोष दिया है। मेरे पास स्वयं की जमीन नहीं है, फिर भी, मैं अपने परिवार के भोजन में योगदान देती हूं, जिसके एवज में कुछ नहीं मांगतीं। इससे मेरे और हमारे आसपास सब–कुछ बदल गया है।''*

महिला शक्ति : चेन्नई के निकट किसानों का समूह

तेलंगापोदार गांव। मुनिगुडा खंड। रायगडा जिला। ओड़ीशा

खाद्य सुरक्षा : *खेती की तकनीकें। मिश्रित फसल उगाना। पारम्परिक खेती। खाद्य संप्रभुता। वन उपज। जलवायु परिवर्तन के मुताबिक ढालना*

किदको किलाका ओड़ीशा के रायगडा जिले की एक छोटी महिला किसान हैं। वह आदिम कोन्धा जनजाति की हैं और अपने जीवन निर्वाह के लिए खेती के अलावा वन उपज पर निर्भर हैं। 65 वर्षीय बुजुर्ग किलाका अपने बाल्यकाल से ही खेती करती रही हैं। उसके परिवार में 18 सदस्य हैं, जो दो एकड़ के उस भूखंड पर खेती करते हैं, जो उसे सरकार से पट्टा प्रणाली के जरिए मिला था। उसने कभी भी अपनी फसल में उर्वरकों या रासायनिक चीजों का इस्तेमाल नहीं किया है और उन प्राकृतिक तकनीकों को अपनाती हैं, जो उसने अपनी मां से सीखे थे। इस क्षेत्र में झूम खेती (कुछ समय तक खेती करने पर भूमि को परती छोड़ अन्य भूमि पर खेती करना) एक प्रचलित तरीका है। वह लंबी एवं छोटी अवधियों के अनेक किस्म के मोटे अनाज, सब्जियों, धान और मिर्चियों की खेती करती हैं। वह अपने भोजन और बिक्री के लिए 33 किस्मों के मशरूम एवं अरबी, पालक, फलों की खेती करती हैं और वन से शहद एकत्रित करती हैं। वह जिसे खाती हैं, उसी की पैदावार करती हैं और बाजार से शहद के बदले नमक लेती हैं। वह वर्षा के क्रम और जलवायु परिवर्तन की स्थितियों को बखूबी समझती भी हैं। यह जानकारी उसे बेहतर उत्पादकता और फसल बर्बाद होने से बचने के लिए सभी फसल का चयन करने में उसकी मदद करती है।

नीति निर्धारकों ने झूम खेती के तरीकों पर सवाल उठाए हैं और विभिन्न कारणों से देश के अनेक भागों में इस पर रोक लगाई गई है। इस प्रणाली में किसान जमीन के एक टुकड़े का अस्थायी तौर पर इस्तेमाल करते हैं। इस जमीन पर छोटी झाड़ियों और पौधों को जलाया जाता है, जबकि पेड़ों को छोड़ दिया जाता है। तीन साल की अवधि के बाद भूखंड को छोड़ दिया जाता है ताकि वह प्राकृतिक पेड़–पौधे उगाने और पुनर्जनन (वेजीटेशन एंड रिजनरेशन) की शक्ति पुनः हासिल कर सके। और, किसान दूसरे भूखंड पर खेती शुरू कर देते है। कुछ लोगों का मानना है कि इस प्रकार का तरीका वन की हरियाली को नुकसान पहुंचाता है क्योंकि खेती के लिए जगह पाने के लिए जमीन के हरे–भरे क्षेत्रों को जलाया जाता है। मगर, सच तो यह है कि छोटे भूखंडों (एक से लेकर दो एकड़ तक) का उपयोग झूम खेती में संरक्षण और पारिस्थितिकीय संतुलन

सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। हाल ही में वन भूमि के अधिक जिम्मेदारी से पुनर्जनन के लिए नए प्रयास किए जा रहे हैं। किलाका जैसे अन्य आदिवासी समूह उपयोग में लाए गए भूखंडों को त्यागने के बजाए उनमें बालवृक्षों का रोपण कर रहे हैं। यह वन भूमि के कुशल पुनर्जनन में मददगार होता है और खाद्य आपूर्ति की एक संगठित प्रणाली भी बनाए रखता है।

झूम कृषि

प्रत्येक फसल के बाद बीजों का भंडारण किया जाता है या स्थानीय बीजों या अनाज के एवज में अन्य परिवारों से उनका आदान–प्रदान किया जाता है। यह प्रक्रिया सुनिश्चित करती है कि बीज स्थानीय, अधिक उपयुक्त, मिट्टी के मुताबिक ढले हुए और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों। साल भर खाद्यान्न आपूर्ति बनाए रखने के लिए किलाका धान, अनेक लंबी एवं छोटी अवधि के अनाज, सब्जियों और मिर्ची की मिश्रित खेती का तरीका अपनाती हैं। उसके खेत पर मोटे अनाज की 18 किस्में हैं। इनमें मंडुआ (फिंगर मिलेट), लंबी एवं छोटी अवधि की कंगनी (फॉक्सटेल मिलेट्स), रागी, बाजरा, ज्वार आदि शामिल हैं। इनके साथ ही, वह मक्का, मखमली सेम, टमाटर, भिंडी, काला तिल, हल्दी, मीठा आलू, अरबी, अरंडी के बीजों, मिर्ची आदि को उगाती हैं। इससे मिट्टी का उपजाऊपन बढ़ता है क्योंकि वह सावधानीपूर्वक मक्का की फसल के साथ लेग्यूम–फिक्सिंग पौधों (जैसे फलियां) का रोपण करती हैं। जैसाकि एक फसल मिट्टी से पोषक तत्व लेती है तो लेग्यूम फसल उसी समय के आसपास उसमें पोषकता की आपूर्ति करती है। इस प्रक्रिया से बिना किसी भारी क्षति के मिट्टी का उपजाऊपन बना रहना सुनिश्चित होता है। अनेक ऐसे स्थानीय पौधे हैं, जिनका किलाका कीट प्रतिरोधकों के रूप में इस्तेमाल करती हैं, जैसे– स्थानीय रूप से उगाया जाने वाला सागो पॉम (साबूदाना–ताड़)। इसका तना काटा जाता है और पौधों पर कीटों के हमले से बचने के लिए उसको रोपा जाता है। यह तरीका एक ही समय में विभिन्न किस्मों के कीटों से निपटने में सफल रहा है। ऐसे और भी कई जोड़ा या संगी पौधे कीट नियंत्रण में मददगार होते हैं। मूंगफली के आसपास गेंदे के फूल का घेरा उगाने से कीट के हमले पर रोक लगती है क्योंकि गेंदे का फूल एक रसायन (थिओपेन) छोड़ता है, जो कीटों का प्रतिरोधी है।

साबूदाने के पौधे के पत्ते कीटों एवं कीड़ों–मकोड़ों को दूर रखते हैं

ये तरीके किलाका को प्रत्येक फसल में अधिकतम उपज और साल भर निरंतर खाद्य आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं। इनके अलावा, वह वन से भी

खाद्य पदार्थ एकत्रित करती हैं। इनमें पत्तेदार सब्जियां (पालक की अनेक किस्में), फल (आम की अनेक किस्में), मशरूम, कंद मूल, महुआ के पत्ते (देसी शराब बनाने के लिए), बांस, प्ररोह (शूट्स), अंडे (जंगली मुर्गी, मोर एवं पक्षी), शहद, मछली, केकड़ा आदि शामिल हैं। खेती से उत्पादित खाद्य पदार्थ उसके परिवार के लिए पर्याप्त हैं, फिर भी वह एक सांस्कृतिक परम्परा के रूप में वन उपज पर निर्भर रहती हैं। वह बाजार में नकद धन या नमक पाने के एवज में वन उपज को बेचती भी हैं।

किलाका सावधानीपूर्वक अपनी फसल का चयन कर सुनिश्चित करती है कि उसे न्यूनतम सिंचाई का सहारा लेना पड़े। प्रत्येक बुआई से पहले वर्षा और तापमान के क्रम के मुताबिक वह सतर्कता के साथ अपनी फसलों का चयन करती हैं। उसने अपने परिवार से अवलोकन की कई विधियां सीखी हैं, जो वर्षा के बदलते क्रम को समझने में उसकी मदद करती हैं। उसका बुआई समय और तकनीकें (स्थानीय बाजरे पर जोर देना, जिसके उगने में कम पानी और समय लगता है) समय पर या देर से वर्षा पर आधारित होते हैं। वह अपनी उपज में वृद्धि के लिए फसलों की किस्मों के साथ प्रयोग करती हैं ताकि कम बारिश, देर से बारिश या बारिश न होने की स्थिति में कम से कम नुकसान उठाना पड़े।

खाद्य पदार्थों की सुरक्षा : कोंधा जनजाति की किकदो किलाके

किलाका और आसपास के गांव के अन्य किसान खाद्य पदार्थों की दृष्टि से सुरक्षित हैं। बाजार की संस्थाएं और कॉरपोरेट खेती अब तक उनके जीवन निर्वाह में सेंध नहीं लगा पाई है। इससे वे अपनी पारम्परिक खेती के तौर तरीकों में सक्षम हैं और अपने लिए उत्पादन, उपभोग एवं अगली फसल के लिए बीज बचाने में भी सक्षम रहे हैं। स्थानीय बीज अधिक अनुकूल होते हैं, जिनका इस्तेमाल कर किलाका न सिर्फ पोषक खाद्य पदार्थों की अनेक किस्में पैदा करने में सक्षम हैं, बल्कि किसी भी रासायनिक चीजों, सिंचाई के विकसित तरीकों या अधिक उपज वाले संकर बीजों (हाईब्रीड सीड्स) के इस्तेमाल के बगैर फसल की पैदावार–मात्रा भी बढ़ी है।

सरपतादा गांव। संत कबीर नगर जिला। उत्तर प्रदेश

सीमांत किसान : *महिला किसान। विविध फसलों का उत्पादन। खाद्य संप्रभुता। खाद्य सुरक्षा*

फोटो : अशोक दत्ता। हिन्दुस्तान टाइम्स फोटो

रामरति देवी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर की एक छोटी महिला किसान हैं। उसका पति भी किसान था, लेकिन कर्ज बढ़ने की वजह से उसने खेती करना छोड़ दिया था। उनका अधिकतर धन खेती में रासायनिक चीजों के इस्तेमाल में खर्च हो जाता था। प्रत्येक फसल में कम उपज से उनका नुकसान बढ़ता गया था। ऐसे समय में रामरति देवी ने अपने एक एकड़ के खेती में खेती करने का फैसला किया। वह ''लघु सीमांत कृषक मोर्चा'', उत्तर प्रदेश की सदस्य बन गईं। उसने वहां पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके सीखे। जैविक खेती की तकनीकों के जरिए अब उसके परिवार की स्थिति बदल गई है। विविध फसलों के उत्पादन (बहुफस्लीय खेती) जैसी आसान तकनीकों की बदौलत वह अपने परिवार की खाद्य जरूरतों की पूर्ति के लिए भिन्न–भिन्न किस्मों की 32 फसलें उगा रही हैं, जिनमें गेहूं, सरसों, गन्ना, लहसुन, धनिया, पालक और आलू भी शामिल हैं। उसका 12 सदस्यीय परिवार खेती के खाद्य पदार्थों पर निर्भर है।

छप्पन वर्षीय रामरति देवी ने 2012 में पारिस्थितिकीय खेती करना शुरू किया था। जब उसके पति ने खेती करना छोड़ दिया तो वह अपने एक एकड़ के खेत के जरिए अपने परिवार की किस्मत बदलने के लिए कृत–संकल्प थीं। पूर्वी उत्तर प्रदेश स्थित किसान संगठन– ''लघु सीमांत कृषक मोर्चा'' से पारिस्थितिकीय खेती की तकनीकें सीख कर वह अपना दृढ़–निश्चय पूरा कर पाईं।

रामरति का पहला कदम खेती में रासायनिक चीजों का इस्तेमाल बंद करना था। कम्पोस्ट और पशु–गोबर की खाद एक आसान कदम था क्योंकि यह उसके खेत के कचरे से बनता है। अन्य मसला एकल फसल पद्धति यानी साल–दर–साल एक ही फसल के उत्पादन का था। उसने उत्पादन में वृद्धि के लिए विविध फसलों के उत्पादन का फैसला लिया। यह उसकी जमीन और स्वयं उसके लिए फायदेमंद साबित हुआ। उसे एक साल में ही अच्छे नतीजे मिल गए। गेहूं एवं मक्का के अलावा वह फसल का क्रमवार बदलाव कर अनेक सब्जियां उगाती हैं। वह टमाटर, बैंगन, मिर्ची, आलू, फूलगोभी, सरसों, करेला, लहसुन, गाजर, धनिया, पालक, गन्ना और अन्य सब्जियों की पैदावार करती हैं। इससे उसे अपने परिवार की दैनिक जरूरतों की पूर्ति में मदद मिली है। वह याद करते हुए बताती हैं– *''कई बार हमारे पास भोजन के लिए कुछ नहीं होता था क्योंकि हम बाजार से कोई भी चीज नहीं खरीद सकते थे। उपज के घटने से आमदनी कम हो गई थी। तब मैंने अनेक सब्जियां उगाने का फैसला किया। हमें अब बाजार पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है। यदि पैसा नहीं हो तो भी हमारे पास भोजन के लिए खाद्य पदार्थ रहते हैं।''*

विविध फसलें उगाने का दूसरा लाभ उसकी प्राथमिक फसलों– मक्का और गेहूं के उत्पादन में वृद्धि होना है।

उसने 5–6 क्विंटल गेहूं और इतनी ही मात्रा में मक्का की पैदावार की। यह उसके पति द्वारा किए गए उत्पादन से ज्यादा थी। उसने पाया कि मिट्टी अधिक उपजाऊ और पोषक हो गई है। वह इनकी बिक्री के धन से पशुधन खरीद पाई। मिट्टी में उच्च पोषकता बनाए रखने के लिए उसने खेत के कचरे से बने कम्पोस्ट के अलावा गाय के गोबर एवं मूत्र से खाद तैयार किया। इससे पहले उसने बाजार से जैविक खाद खरीदा था, पर बाद में स्वयं द्वारा तैयार किए गए खाद के इस्तेमाल का फैसला किया क्योंकि बाजार का खाद उतना अच्छा नहीं था। प्राकृतिक पीड़नाशकों के लिए वह कड़वे पत्तों और पानी का एक मिश्रण तैयार करती हैं, जिसका प्रत्येक 10 दिनों के बाद छिड़काव किया जाता है। उसने बुआई के अगले सीजन के लिए बीज बचाना भी शुरू कर दिया है। कभी–कभी वह अपने बीजों का पड़ोसियों के साथ आदान–प्रदान करती हैं और बाजार के बीजों से परहेज रखती हैं क्योंकि इन बीजों की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती और ये काफी महंगे होते हैं। वह एक साल तक बीजों का भंडारण करती हैं और साल भर रोटेशन–आधार पर सब्जियों के बीजों की बुआई करती हैं।

उसके परिवारजन खेत पर खाद बनाने, बुआई, निराई, फसल काटने और उसकी बिक्री में हाथ बंटाते हैं। वह खुश है कि उसे खेती के लिए कर्ज नहीं लेना पड़ता और खेत के सभी वित्तीय खर्चों में कटौती कर पाई हैं। प्रत्येक चीज खेत की उपज से तैयार की जाती है और अगले सीजन के लिए बचत की जाती है। यह किसानों और पर्यावरण के लिए पूरी तरह टिकाऊ तरीका है।

वह बताती हैं– *''मैं गेहूं और मक्का की प्रत्येक फसल से न्यूनतम 30–50 हजार रु. कमाती हूं। हमारे उपभोग की जरूरतों के बाद बहुत–कुछ बच जाता है, इसलिए हमने बाजार में सब्जियां बेचना भी शुरू किया है। उन्हें कुछ दिनों के अंतराल पर नियमित रूप से बेचा जाता है ताकि ज्यादा मुनाफा मिले। मैं कर्ज अदा कर पाई, अपने बेटे की शादी कराई और फसलों की सिंचाई के लिए नदी से पानी लाने में बोरिंग का इस्तेमाल भी शुरू किया। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके हमारे जैसे किसानों के लिए टिकाऊ और सस्ते हैं। ये वाकई फायदेमंद हैं।''*

खेत पर मुफ्त में उपलब्ध चीजों का उपयोग

सोनाले गांव। जलगांव जिला। महाराष्ट्र

लाभ कमाना : *नकदी फसल और जीवन निर्वाही खेती। मिश्रित फसल उगाना। खेत के सूखे कचरे की कम्पोस्टिंग (बॉयोमास कम्पोस्टिंग)। प्राकृतिक कीट नियंत्रण*

भीमराव पाटिल और उसकी पत्नी सुषमा महाराष्ट्र में जलगांव जिले के छोटे किसान हैं। उन्होंने 2001 में अपने दो एकड़ से कुछ अधिक के भूखंड पर खेती शुरू की थी। प्रारंभ में भीमराव अपने खेत में कपास की मुख्य खेती के लिए रासायनिक चीजों का इस्तेमाल करता था। यद्यपि उसका कपास उत्पादन संतोषजनक था, पर उसे लगा कि वह लाभ नहीं कमा पा रहा है क्योंकि रासायनिक चीजों के लिए भारी खर्च करना पड़ता था। जल्दी ही वह पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाने लगा। उसके खर्चे कम हो गए और पिछले साल उसने अपने खेत की उपज से डेढ़ लाख रु. कमाए।

भीमराव ने 2001 में अपने खेत पर खेती शुरू की थी। उसका गांव महाराष्ट्र के जलगांव जिले में है। यह ज्वालामुखीय मिट्टी की दृष्टि से समृद्ध इलाका है, जो कपास की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त होता है। अन्य किसानों की तरह उसने भी रासायनिक चीजों पर भारी खर्च कर कपास की खेती शुरू की ताकि अच्छी पैदावार मिले। उसने महसूस किया कि शुरूआत में उसकी पैदावार ठीक–ठाक थी, लेकिन उसको अधिक लाभ नहीं हो रहा था। बीजों, अनेक उर्वरकों और कीटनाशकों पर भारी खर्च के बावजूद उसको कम लाभ हो रहा था। तब उसने पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाना शुरू कर दिया। उसने कई किसानों से बातचीत की और पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों पर पुस्तकें पढ़ीं। अब दो एकड़ से थोड़ा अधिक के उसके खेत में एक साल में संकर कपास, गेहूं, प्याज, ज्वार, उड़द, मूंग, अरहर और हरी सब्जियों जैसी 25 फसलों की पैदावार हो रही है। खेती पर उसके खर्चे 75 प्रतिशत कम हो गए हैं और उससे अपना लाभ बढ़ाने में मदद मिली है।

भीमराव इष्टतम तरीकों से अपने खेत का उपयोग करता है। वह डेढ़ एकड़ में संकर कपास की प्राथमिक फसल और आधे एकड़ में मौसमी रबी एवं खरीफ की फसलों की पैदावार करता है। वह प्रयोगों के लिए बाकी बचे छोटे से हिस्से का उपयोग करता है। इसमें वह विभिन्न फसलें उगा कर अगले सालों में पौधे के विकास और उसकी उपयुक्तता को समझने की कोशिश करता है। वह अनेक तरीके अपना कर सुनिश्चित करता है कि मिट्टी लाभ दे और उत्पादकता बढ़े। वह जोर देकर कहता है कि ये दोनों उद्देश्य पाने के लिए मिश्रित फसलें उगाना आसान एवं विश्वसनीय तरीका है। खेत से उसके परिवार के भोजन की जरूरतें भी पूरी होती हैं। यदि जलवायु परिवर्तन की वजह से कोई फसल नाकाम हो जाए तो भी कुछ फसलें निश्चित मात्रा में पैदा होंगी।

उसका यह भी मानना है कि सूखा कचरा (बॉयोमास) खेती का सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग है और वह प्रत्येक तरीके से खेत के कचरे का उपयोग करता है। बॉयोमास का मतलब खेत में मौजूद सूखे पत्तों, टहनियों, अन्य पौधों के कचरे और अन्य जैविक पदार्थों से है, जिनका खेती में उपयोग किया जाता है। वह अपने पूरे खेत में और किनारों पर उन्हें फैला कर बिछाता है। वह ''जीवामृतम'' का पूरे खेत और उसके किनारों पर छिड़काव करता है ताकि पूरे खेत में कम्पोस्ट बनाया जा सके। इससे मिट्टी की पोषकता बढ़ाने में मदद मिलती है क्योंकि यह नवीकरणीय (रिन्यूएबल) है और किसी प्रकार से हानिकारक उत्सर्जन नहीं करता। खेत का सूखा

कचरा (बॉयोमास) अन्य जीवाश्म ईंधनों (फोसिल यूल्स) पर निर्भरता में कमी लाने का एक कुशल तरीका है। भीमराव का अपने खेत के पास उसके भाई के साथ साझे में एक कुआं भी है। पानी की कमी से प्रतिदिन 10–15 मिनट तक ही उसके खेत की सिंचाई होती है। अपने पौधों को सिंचित रखने के लिए वह मुख्य फसल के बीच अन्य फसलें उगाता है और मल्चिंग करता है। उसने खेत के किनारों पर पेड़ भी उगा रखे हैं। इससे मिट्टी में नमी को रोके रखा जाता है, पौधों के लिए तापमान अधिक ठंडा रहता है और पक्षी आकर्षित होते हैं, जिससे कीटों को दूर रखने में मदद मिलती है।

प्रारम्भिक वर्षों में भीमराव ने बाजार से बीज और जैविक पदार्थ खरीदे थे। लेकिन, बाद में वह स्वयं बीज बचाने और खाद बनाने लगा। अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों की बुआई उसके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। कपास की अपनी प्राथमिक फसल के लिए वह बीटी कपास का इस्तेमाल नहीं करता। वह उन बीजों को चाहता है, जो अच्छी गुणवत्ता वाले और स्थानीय किस्म के हों। अन्य सब्जियों और फसलों के लिए वह अब स्वयं के बीज बचाता है। इससे उसको धन की बचत होती है और अगली बुआई सीजन के लिए उत्तम बीज रहते हैं। चूंकि उसके पास कोई पशुधन नहीं है, इसलिए वह ''जीवामृतम'' तैयार करने के लिए अन्य किसानों से गाय का गोबर और मूत्र उधार लेता है। दो–तीन साल की खेती के दौरान उसका उत्पादन पहले से अधिक हो गया है। वह बताता है– ''प्रतिवर्ष उत्पादन बढ़ता गया है। एक साल पहले मैंने ''जीवामृतम'' का इस्तेमाल बंद कर दिया। फिर भी मुझे अच्छे नतीजे मिले। मतलब यह है कि मेरा खेत बहुत अच्छा और उपजाऊ बन गया है। जब आप यह प्रतिवर्ष करते हैं तो आपकी मिट्टी बेहतर बनती है और उसके साथ उत्पादन भी बढ़ता है। मुझे यकीन है कि भविष्य में उत्पादन बढ़ेगा ही, घटेगा बिल्कुल नहीं।''

भीमराव की खेती के तरीके पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों के अच्छे उदाहरण हैं, जो छोटे खेतों से न सिर्फ उत्पादन की वृद्धि, बल्कि अच्छे–खासे वित्तीय फायदे पाने में मददगार हैं। उसने अपने खेत की उपज से आमदनी बढ़ाने में तेजी से कदम आगे बढ़ाए हैं। वह संतोषप्रद ढंग से कहता है– *''मेरे खेत में प्रति एकड़ 15–20 क्विंटल कपास का उत्पादन होता है। उसे जलगांव के बाजार में बेचा जाता है। पारिवारिक जरूरतों की पूर्ति के बाद मैं बाकी फसल और सब्जियां भी बेचता हूं। यह मेरी अतिरिक्त आमदनी के रूप में होती है। पिछली फसल के दौरान मैंने डेढ़ लाख रु. की कमाई की। यह भी तब, जब गेहूं की फसल बिगड़ गई थी और कुछ इलाकों में कपास के फूल नहीं उगे थे। मेरा यह साल अच्छा रहा और मुनाफा कमाया क्योंकि मैंने बाजार में उपलब्ध रासायनिक चीजों और उर्वरकों पर कोई खर्च नहीं किया। मैं पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों से खुश हूं।''*

बेहतर कीमतें पाने के लिए रसायन–मुक्त खेती

दरवेशपुरा गांव । कटरी सराय खंड । नालंदा जिला । बिहार

चयनात्मक खेती : *वर्मीकम्पोस्टिंग । रसायन–मुक्त । भूमि की तैयारी । मिट्टी का स्वास्थ्य*

अवधेश सिंह एक बहुत छोटे भूखंड का मालिक है। वह 12 डिसमिल्स (0.12 एकड़) भूमि पर खेती करता है। अपनी जमीन से अधिकतम लाभ लाने के लिए वह बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से फसलों का चयन करता है। मिश्रित खेती और वर्मीकम्पोस्टिंग (केंचुओं की खाद) जैसे तरीकों से उसने पिछली फसल में अच्छा मुनाफा कमाया है। उसकी खेती के लिए जल्दी ही और जमीन खरीदने की योजना है। एक दूसरा किसान अरूण सिंह अपने चार सदस्यों के जीवन निर्वाह के लिए 28 डिसमिल्स (0.28 एकड़) भूमि पर खेती करता है। वह प्राकृतिक रूप से तैयार खाद और कम्पोस्ट का प्रशंसक है। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों से उसकी आमदनी दुगुनी हो गई है। वह कभी भी रासायनिक चीजों का पुनः इस्तेमाल नहीं करना चाहता।

पिछले तीन साल से ये दोनों किसान अपने–अपने खेतों में अच्छी उपज कर लाभ कमा रहे हैं।

पहले अवधेश सिंह अपने छोटे भूखंड पर धान की पैदावार कर रहा था। गांव के अनेक अन्य किसानों की तरह उपनी उपज बढ़ाने के लिए उसने बाजार से रासायनिक संवर्धक (केमिकल इनहेन्सर्स) खरीदे थे। छोटे किसान के नाते उसने ये चीजें खरीदने और सिंचाई सुविधाओं पर अपना सारा धन खर्च कर डाला। उसने हरसंभव प्रयास के जरिए लाभ कमाने के लिए संघर्ष किया क्योंकि उसे कई कीटनाशक पदार्थों को खरीदना पड़ता था। लेकिन, 2011 में उसने पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाए और रासायनिक संवर्धक खरीदना बंद कर दिया। उसने मुख्य फसल के रूप में मिर्चियां उगाना शुरू किया और उसके साथ बीच में हल्दी की फसल उगाई। उसने मिट्टी की पोषकता बढ़ाने पर भी जोर दिया। उसका पड़ोसी अरूण सिंह भी एक छोटा किसान है और अवधेश सिंह के साथ–साथ वह भी रसायन–मुक्त खेती करने लगा। छोटी जोत के मालिक दोनों किसानों ने सामूहिक रूप से भूमि की उर्वरता में सुधार लाने का प्रयास किया।

इस प्रक्रिया में वर्मीकम्पोस्टिंग (केचुओं की खाद) उनका सबसे बड़ा साथी रहा। उन्होंने एक पड़ोसी, जो वर्मीकम्पोस्ट करता था, उससे केंचुए खरीदे। इसके बाद केंचुओं (वॉर्म्स), सब्जियों और खेत के कचरे की मदद से केंचुओं की खाद तैयार करने में एक महीना लगा। उसको बुआई से तीन दिन पहले इस्तेमाल किया गया। इसके साथ–साथ गाय के गोबर, मूत्र और पारम्परिक चूल्हे या मिट्टी के चूल्हे की राख से अन्य

प्राकृतिक उर्वरक तैयार किए गए। उसको बुआई के 8 दिन बाद खेत में बिखेरा गया। यह फसल की प्राकृतिक वृद्धि में मदद करता है। अवधेश सिंह अपने छोटी जोत के खेत से न्यूनतम एक क्विंटल मिर्चियों की पैदावार कर रहा है। उसने उन्हें प्रत्येक बार (उपज अवधि लगभग 5 माह) 2,500 रु. में बेचा। इसके अलावा, उसे हल्दी उगाने से भी अच्छा लाभ मिला। वह उसे प्रत्येक बार (उपज अवधि लगभग 8–9 माह) 1,500 रु. में बेचता है। अवधेश इन नतीजों को लेकर बहुत उत्साहित है और उसकी इन मुनाफों से अतिरिक्त जमीन खरीदने की योजना है। वह सब्जियों और धान की पैदावार करना चाहता है ताकि उसे बाजार से कोई भी खाद्य पदार्थ न खरीदना पड़े। वह बताता है– ''जब मैं थोड़ी अतिरिक्त जमीन खरीद लूंगा तो मेरी योजना धान की स्थानीय किस्म उगाने और उसके साथ सब्जियों की मिश्रित खेती करने की है। इसके लिए मुझे वर्मीकम्पोस्टिंग के जरिए मिट्टी के उपजाऊपन पर ध्यान केंद्रित करना पड़ेगा। यह कदम मिर्चियों और हल्दी की उपज में कामयाब रहा है और सब्जियों के लिए तो यह ज्यादा अच्छा रहेगा। रसायन–मुक्त खेती के उत्पादों की बेहतर कीमतें मिलती हैं और उसमें महंगी चीजों की जरूरत नहीं पड़ती। मुझे बहुत पहले ही पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों का सहारा ले लेना चाहिए था।''

हरी मिर्चियां : अपने खेत पर अवधेश सिंह

अरूण सिंह ने आलू की पैदावार करने के बाद अपनी जमीन को परती पर छोड़ दिया ताकि पोषक तत्व बहाल हो सकें। उसके बाद उसने आलू के साथ पालक, हल्दी, भिंडी, प्याज, कंद, मीठे आलू, लौकी और बैंगन जैसी सब्जियों की बीच की फसलें उगाईं। वर्मीकम्पोस्ट और मिश्रित खाद के इस्तेमाल के बाद उसकी पैदावार बढ़ गई। उसने 40 रु. प्रति किलो की दर से 600 किलो से भी अधिक आलू बेचे। वह बाजार में लगातार सब्जियां भी बेचता है। उसने प्रत्येक 4–6 माह पर अपनी फसलों से 60,000 रु. से भी अधिक कमाए। अब उसकी खेती से लगातार आमदनी हो रही है क्योंकि उसे अपने खेत को परती पर नहीं छोड़ना पड़ता और पोषक तत्वों की बहाली का इंतजार नहीं करना पड़ता। यह मिश्रित खेती के तरीके से संभव हुआ। वह गर्वपूर्वक बताता है– ''पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके रसायन–मुक्त होते हैं, इसलिए कोई निवेश नहीं करना पड़ता और सिर्फ मुनाफा होता है। इसके अलावा, मिट्टी का उपजाऊपन भी बहुत बढ़ता है। मेरी फसलें स्वास्थ्यवर्धक, ज्यादा उपजकारी और पोषक होती हैं। आश्चर्यजनक यह है कि बहुत कम पानी की जरूरत पड़ती है। अन्य लोगों की सब्जियों की तुलना में मुझे अपनी सब्जियों के ज्यादा दाम मिलते हैं। बाजार में वे बेहतरीन दाम पर बिकती हैं।''

स्थानीय खाद : राख से स्थानीय तौर पर तैयार किए गए खाद के निकट खड़ा अरूण सिंह

अवधेश सिंह और अरूण सिंह ने पिछले तीन सालों के दौरान अपने खेतों पर पारिस्थितिकीय तौर तरीकों से खेती कर न सिर्फ ज्यादा पैदावार की, बल्कि उनकी आमदनी भी कई गुना बढ़ी है। वे अन्य किसानों से

पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों के बारे में अधिक सीखना चाहते हैं और अपने क्षेत्र में अन्य किसानों को ये तौर तरीके अपनाने में मदद को तत्पर रहते हैं। वे दोनों चाहते हैं कि अन्य किसान ये तौर तरीके अपनाएं क्योंकि ये न सिर्फ आसान है, बल्कि मिट्टी का उपजाऊपन बढ़ाने के लिए बहुत अच्छे हैं और इससे किसी भी किसान का मुनाफा बढ़ता है।

सूखे के साल में मुनाफा

हरियाणचेरी गांव। चेनेकोठपल्ली खंड। अनंतपुर जिला। आंध्र प्रदेश

सिंचाई नहीं : *खाद्य संप्रभुता। मोटे अनाज की खेती। बिल्कुल नहीं या कम सिंचाई। चारा*

आंध्र प्रदेश का अनंतपुर जिला मूंगफली की एक ही फसल की लगातार पैदावार करने के लिए कुख्यात है। वर्षा की कमी और खेती में बाहरी लागत की महंगी चीजों के इस्तेमाल की वजह से किसान कर्ज के बढ़ते बोझ का सामना करते रहे हैं। कई किसान तो इससे तंग आकर आत्महत्या कर चुके हैं। लेकिन, हमेशा यह स्थिति नहीं थी। पहले किसान रोटेशन के क्रम वाली पद्धति से सूखा–प्रतिरोधी फसलों की पैदावार कर रहे थे, जिससे इस क्षेत्र की कृषि जैव–विविधता के विकास में मदद मिली। इससे अगली फसल के लिए जमीन भी पोषक बनी। अनंतपुर जिले के हरियाणचेरी गांव के नागलक्ष्मी बी. कृष्णप्पा ने इन तरीकों के इस्तेमाल की ओर लौटने का फैसला किया। उसने पाया कि अधिक क्षरणता (इरोडेबिलिटी) एवं निम्न जैविक तत्वों के साथ उसके खेत की मिट्टी का रूप खुरदरा होने लगा था। उसने कम वर्षा की वजह से मूंगफली की खेती में कई बार नुकसान उठाने के बाद पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाए और इस साल वर्षा न होने के बावजूद उसने भारी मुनाफे के रूप में 25,000 रु. कमाए।

कृष्णप्पा ने अपने डेढ़ एकड़ के खेत के लिए बाजरा के 6 किलो बीज खरीदे थे। उसने सुना था कि बाजरा जैसे मोटे अनाजों (मिलेट) की खेती के लिए कम पानी चाहिए और उसके उगने में कम समय लगता है। उसने अन्य किसानों से कुछ कम्पोस्ट और भेड़ की खाद भी खरीदी। उसके पास एक बकरी है और उसे पता था कि प्राकृतिक उर्वरक खाद बनाने के लिए अधिक गोबर की जरूरत पड़ेगी। बुआई से पहले उसने यह

खाद 15 दिन तक खेत में डाला। उसके बाद उसने इस आशा के साथ बीज बोए कि कम से कम एक क्विंटल पैदावार होगी। उसने अपनी फसल की सिंचाई नहीं की और सिर्फ सुबह की ओस पर निर्भर रहा। इसके अलावा, उसने किसी भी खरपतवार और घास को न उखाड़ फेंकने का फैसला किया। तीन महीने के बाद उसने अपने खेत से तीन क्विंटल फसल काटी। वह इन नतीजों से बहुत उत्साहित है। बाजार में प्रचलित कीमत के अनुसार वह इस फसल को 12,000 रु. में बेचेगा। वह कुछ और फसल चक्र तक मोटे अनाजों की खेती जारी रखना चाहता है ताकि अपनी कमाई से कुछ और जमीन खरीद सके। वह बताता है– *''हमारे गांव के बुजुर्ग मोटे अनाजों की खेती करते थे, लेकिन हम मूंगफली की ओर मुड़ गए। मुझे पता था कि बाजरा जैसे मोटे अनाजों का खूब उत्पादन होगा। मगर यह तो बम्पर पैदावार हुई है। हमारी मिट्टी मोटे अनाजों की फसलों के लिए उपयुक्त है, धान की खेती के लिए नहीं। मूंगफली की फसल सर्वाधिक लोकप्रिय हो सकती है, जिससे अधिक धन मिलता है, लेकिन यह जोखिमभरी है क्योंकि कीट के हमलों की वजह से महंगे कीटनाशकों की जरूरत पड़ती है। मुझे बाजरा जैसे मोटे अनाजों के लिए कम से कम देखभाल की जरूरत पड़ती है और पानी बिल्कुल जरूरी नहीं है।''*

वह पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों के बारे में अधिक सीखने की कोशिश कर रहा है ताकि उसकी पैदावार और आमदनी दोनों बढ़ें। वह रसायनों का इस्तेमाल पूरी तरह बंद करना और उनके स्थान पर प्राकृतिक उर्वरक खाद का इस्तेमाल करना चाहता है। इससे उसके निवेश और खर्चों दोनों में कमी आएगी। वह विभिन्न जैविक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग कर मिट्टी को अधिक स्वस्थ बनाने की कोशिश में है। उसे यकीन है कि वह अपने कर्ज को जल्द ही चुका देगा।

बाजरा के अलावा, उसने अपनी जमीन से 3 क्विंटल से अधिक घास भी प्राप्त की। इसका आम तौर पर पशुधन के चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। वह अधिक खाद बनाने के लिए चारा देकर गोबर लाएगा और शेष बचे चारा (घास) को बाजार भाव पर बेचेगा, जिससे उसे लगभग 15,000 रु. मिलने की उम्मीद है। वह बताता है– *''इस साल के सूखे ने मुझे खेती के कुछ सबक सिखाए हैं। मुझे यह कल्पना नहीं थी कि मैं बिना वर्षा के इतनी अधिक कमाई कर सकता हूं। पारिस्थितिकीय खेती मेरे जैसे किसानों के लिए बहुत उपयोगी हैं।''*

बाजार के साथ जुड़ाव

मैसूर। कर्नाटक

बाजार : *रसायन–मुक्त उत्पाद। छोटे व्यापारी। सामूहिक संगठन एवं सहायता समूह। किसान संगठन। उपभोक्ताओं में जागरूकता*

निसर्गा : ताजा एवं प्रोसेस्ड उत्पाद

छोटे और सीमांत किसानों के सामने एक सबसे बड़ी चुनौती अपनी फसल की पैदावार को नियमित रूप से बाजार में बेचने की है। भंडारण, उचित मूल्य निर्धारण और कृषि उत्पादों की मार्केटिंग मुनाफा कमाने के लिए उतने ही महत्वपूर्ण है, जितना कि उत्पादन की प्रक्रिया। सड़कों, वाहनों, भंडारण सुविधाओं, किसान मंडियों, कॉऑपरेटिव्स एवं कीमत के विनियमन जैसी सुविधाओं के अभाव में वे दलालों और स्थानीय साहूकारों के झांसे में आ जाते हैं। ऐसे अनेक कृषि अनाज के बाजार हैं, जो मांग और आपूर्ति की प्रक्रिया (मेकेनिज्म) के तहत काम करते हैं। सरकार कुछ फसलों (मुख्य रूप से धान और गेहूं) का न्यूनतम खरीद मूल्य तय करती है, लेकिन अन्य कई फसलें इस श्रेणी में नहीं आतीं। कहने का मतलब यह है कि आवश्यक ढांचागत सुविधाओं के अभाव और गलत तौर तरीकों की वजह से किसानों को अपने उत्पाद बेचने के लिए समझौतावादी स्थिति में छोड़ दिया जाता है। इसके अलावा, अधिकतर बाजारों की नीतियां मोटे अनाजों और देसी किस्मों के धान जैसी पारम्परिक फसलों को अहमियत नहीं देतीं। ऐसी हालत में किसानों के सामने कोई विकल्प नहीं रहता और उन्हें बाजार में प्रचलित सीमित किस्में एवं फसलें उगाने को विवश होना पड़ता है। इससे पारम्परिक फसलों को भूला दिया जाता है, जिसका कृषि जैव–विविधता पर प्रतिकूल असर पड़ा है। लेकिन, अब देश भर में छोटी–छोटी पहलें की जा रही हैं। इनके तहत किसान संगठन और किसान समूह स्थापित कर देसी एवं पारम्परिक फसलें और उनकी किस्में उगाने वाले किसानों को उपभोक्ताओं से जोड़ने में मदद की जा रही है। ये पहलें आंदोलन का रूप भी ले रही हैं। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों को बढ़ावा देने से किसान गुणवत्तायुक्त उत्पाद पैदा कर रहे हैं, जो स्वास्थ्यवर्धक हैं और खेती संबंधी पारम्परिक ज्ञान (जिसके जलवायु परिवर्तन के अनुसार ढलने में साक्ष्य हैं) अगली पीढ़ी को दिया जा रहा है। साथ ही, खेती के खर्चों में कमी से किसान वित्तीय जोखिमों से बच जाते हैं।

मैसूर जिले और उसके आसपास के छोटे किसान फसल की प्रोसेसिंग (प्रसंस्करण), भंडारण, जूट की बोरियां पाने, परिवहन के खर्चे चुकाने जैसी अनेक समस्याओं का सामना कर रहे थे। इन किसानों ने देसी धान की किस्में, बाजरा, मक्का, दालें, नारियल, गन्ना, सब्जियां, फल, मिर्चियां की रसायन–रहित पैदावार के लिए

पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाए। सिद्धाराजू नामक किसान का उदाहरण ही लें, जिसको नियमित रूप से अच्छा लाभ कमाने के लिए अपनी उपज को बेचने में भारी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था। उसने और निकटवती इलाकों के कुछ अन्य किसानों ने पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके सीखे। उन्होंने अपनी उपज की बिक्री के सिलसिले में किसी भी दलाल को शामिल किए बगैर संयुक्त रूप से एक नेटवर्क बनाने का फैसला किया।

उन्हें इस काम को अंजाम देने में बहुत–सारी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। छोटे किसानों के नाते उन्हें इस काम का कोई अनुभव नहीं था। उन्होंने फसल की पैदावार के भंडारण और उसकी बिक्री के लिए एक दुकान की जगह किराए पर ली। उन्होंने 'प्राकृतिक खाद्य उपज ट्रस्ट' के रूप में पंजीकरण करवाया। इसका उद्देश्य अपने मुनाफे का दुकान को अच्छी तरह चलाने और उसको मजबूत बनाने में निवेश करना था। इस काम में सहयोग देने के इच्छुक ट्रस्टियों और सदस्यों ने सांझा रूप से पूंजी लगाई। प्रारम्भिक सालों में वे दुकान से आई आमदनी से दुकान का किराया भी नहीं दे पाते थे। इसलिए, उन्होंने अंततः पड़ोस में अंदर की तरफ कम किराए में एक दुकान ली। लेकिन, यह बदलाव फायदेमंद रहा और धीरे–धीरे अनेक उत्पादों की बिक्री बढ़ती गई। सबसे बड़ी खूबी यह थी कि ये उत्पाद पूरी तरह रसायन–मुक्त थे, जिन्हें उपभोक्ताओं ने पसंद किया। इस पहल से ये किसान, दलालों के जाल से बच कर, प्राकृतिक रूप से पैदा किए गए खाद्य उत्पादों के बारे में उपभोक्ताओं के बीच जागरूकता भी फैलाना चाहते थे। आठ साल पहले अपनी साधारण शुरूआत करने के बाद से निसर्गा (यानी प्राकृतिक) नामक इस दुकान ने दोनों लक्ष्य हासिल किए हैं। आसपास और दूरदराज की जगहों के लगभग 150 किसान अपने रसायन–मुक्त उत्पाद सीधे निसर्गा को भेजते हैं। किसान इस दुकान के साथ प्रतिमाह एक बड़ी संख्या में जुड़ते रहे हैं।

उन्होंने खरीद और बिक्री की एक कुशल प्रणाली बनाने के लिए अनेक प्रबंध किए, जैसे– ट्रेन से भेजी कई उपज को लाने, व्यक्तिगत रूप से किसानों द्वारा अपनी सब्जियां पहुंचाने और कुछ सीमांत किसानों की उपज के स्थानीय परिवहन के किराए का भुगतान। अब सिद्धाराजू पैकेजिंग और लेबल लगाने के अलावा कुछ चीजों की प्रोसेसिंग भी करता है। कुछ उत्पाद आंध्र प्रदेश के गैर–मुनाफा–आधारित संगठन जैसे *तिम्बाक्तु कलेक्टिव* और कर्नाटक एवं गुजरात के बिना रसायन की *जीरो–बजट* वाली खेती करने वाले किसानों से भी आते हैं। निसर्गा का एकमात्र बुनियादी सिद्धांत उन किसानों के प्राकृतिक और रसायन–मुक्त उत्पादों की बिक्री करना है, जिनको कॉरपोरेट जगत का समर्थन नहीं है। इनके लिए किसी प्रमाणीकरण की जरूरत नहीं है क्योंकि सिद्धाराजू समय–समय पर खेती की तकनीकों की जांच के लिए किसानों के खेत पर भी जाते हैं।

निसर्गा के बिक्री केंद्र पर सिद्धाराजू

वह अन्य किसानों को पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाने और निसर्गा का अंग बनने को प्रेरित करते हैं। अब वह सब्जियों और फलों की एक टिकाऊ एवं नियमित सप्लाई के उन तौर तरीकों को अपनाना चाहते हैं, जो प्रतिदिन की बिक्री में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

निसर्गा के जरिए अपनी उपज बेचने वाला किसान गौडा बताता है– *''उपज के लिए सही बाजार और बेहतर कीमतों की तलाश करना छोटे किसानों के लिए एक बड़ी चुनौती है। अन्य किसानों की तरह वह भी बाजार और सरकार से कर्ज–माफी के बजाए बेहतर कीमतें पाने के लिए संघर्ष कर रहा था। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाने वाले किसानों के एक नेटवर्क के जरिए वह मैसूर में सिद्धाराजू से मिला था। गौडा के अनुसार, बाजार से संबंधित इस प्रकार की पहल से छोटे किसानों की उत्पादकता में वृद्धि और उन्हें टिकाऊ बनाना संभव है। हमारे जैसे किसानों से सीधे खरीदने वाली इन दुकानों की संख्या बहुत कम है और बमुश्किल दिखती हैं। लगभग 150 किसान निसर्गा को अपनी उपज साल भर भेजते हैं। हम मैसूर और उसके आसपास निसर्गा की और शाखाएं खोलने में लगे हैं ताकि अधिक लोग, अधिक किसान और अधिक उपभोक्ता लाभान्वित हो पाएं।''*

कृषि जैव–विविधता का संरक्षण और उससे संबंधित ज्ञान का विस्तार

कर्नाटक

बाजार : *खाद्य संप्रभुता। पारम्परिक ज्ञान को पुनर्जीवित करना। ज्ञान का आदान–प्रदान। देसी फसलें। समुचित व्यापार, जन–आंदोलन। पारिस्थितिकीय खेती के उत्पादों को लेकर बाजार की कोई नीति नहीं*

फोटो : सहजा समृद्धा

पारिस्थितिकीय खेती करने वाले किसानों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है। ये किसान व्यापार नीतियों से परेशान अन्य किसानों की तुलना में बाजार में अपनी उपज बेचने में अधिक समस्याओं का सामना करते हैं। पारिस्थितिकीय खेती के उत्पादों के एक्सक्लुसिव या समर्पित बाजारों के अभाव में अधिकतर उत्पाद सामान्य बाजारों में बिकते हैं, जिससे उनका मुख्य उद्देश्य ही धराशाही हो जाता है। कुछ शहरों में संचालित होने वाले इनके बिक्री केंद्रों की संख्या बहुत कम है। वे न सिर्फ महंगे, बल्कि आम आदमी की पहुंच से बाहर हैं। इन उत्पादों की बढ़ी हुई कीमतें विक्रेताओं, खरीदारों एवं उत्पादकों के बीच अंतर को और भी बढ़ा देती है। इन जैसी समस्याओं एवं दलालों को दूर रखने और एक साझा मूल्य प्रणाली की शुरूआत जैसे मसलों पर ध्यान देने के उद्देश्य से 2010 में सहजा समरूधा ओर्गेनिक्स प्रोड्यूसर कंपनी लि. की स्थापना की गई थी ताकि रसायन–मुक्त खेती का बाजारों के साथ जुड़ाव कायम हो सके। इससे पहले 2006 में जैविक खेती के समुचित व्यापार को बढ़ावा देने के लिए जैविक किसानों एवं जैविक समूहों के एक फेडरेशन के रूप में ''जैविक कृषि सोसायटी'' की स्थापना की गई। सहजा कंपनी के शेयरधारक पारिस्थितिकीय खेती करने वाले किसान और खाद्य प्रोसेसर्स हैं। यह सप्लाई श्रृंखला को सुगम बनाने के उद्देश्य से किसानों, जैविक बिक्री केंद्रों और उपभोक्ताओं का एक समर्पित नेटवर्क था। लेकिन, सहजा कंपनी किसानों की उपज की बिक्री के अलावा भी बहुत–कुछ करना चाहती है। किसानों एवं उपभोक्ताओं की श्रृंखला के निर्माण के अलावा ये संगठन प्रशिक्षण के जरिए खेती के तरीकों के क्षमता विकास, खेत पर प्रोसेसिंग के जरिए आमदनी में वृद्धि

और उपभोक्ताओं में जागरूकता एवं प्रचार के जरिए उत्पादों के बाजार के विस्तार के कार्य करते हैं।

पारम्परिक ज्ञान करोड़ों लोगों की खाद्यान्न, कृषि एवं स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साथ ही, यह आदिवासी लोगों की सांस्कृतिक पहचान और आध्यात्मिक आस्था प्रणालियों का केंद्र–बिंदु है। इन समुदायों के साथ मिल कर सहजा के शोध का उद्देश्य प्रथागत कानूनों की समझ बढ़ाना और पारम्परिक ज्ञान एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करना है। ये संगठन उन किसानों को बढ़ावा देते हैं, जो पारम्परिक एवं देसी किस्मों और उनके बीजों का संरक्षण तथा पारिस्थितिकीय तरीकों से उनकी खेती करना चाहते हैं। सहजा ओर्गेनिक्स के साथ काम करने वाले किसान पारम्परिक ज्ञान को पुनर्जीवित करने के लिए देसी बीज बचाते हैं ताकि इस तरीके से भावी पीढ़ियां लाभान्वित हों और बाहरी स्रोतों (जैसे– बाजार) पर कभी भी निर्भर न रहें। किसान पारम्परिक ज्ञान एवं बीजों के आदान–प्रदान के लिए मंचों एवं कार्यशालाओं में मिलते हैं। इनमें विविध फसलों के उत्पादन, मसालों की मिश्रित खेती और अन्य तरीकों पर चर्चा करते हैं ताकि मिट्टी के उपजाऊपन में सुधार और कीटों एवं बीमारियों पर नियंत्रण में मदद मिले तथा उत्पादन बढ़े। इन गोष्ठियों में वे अनुकूलक प्रबंधन (एडेप्टिव मैनेजमेंट), मिट्टी के स्वास्थ्य, मिट्टी की जैव–विविधता और पारिस्थितिकीय कार्यों की दृष्टि से विशिष्ट सबक भी सीखते हैं। उन तरीकों पर अत्यधिक जोर दिया जाता है, जिनसे न सिर्फ लागत में कटौती होती है, बल्कि उपज भी बढ़ती है। उनका ध्येय जैव–विविधता की बहाली, टिकाऊपन सुनिश्चित करना और किसानों का सशक्तीकरण है, जिसमें किसानों के साथ–साथ पर्यावरण को भी लाभ हों। होलेनापासिशुरा के किसान होयसाला एस. अप्पाजी का कहना है– *''मैं राजमूंदी चावल के लिए जुताई न करने (जीरो टिलिंग) के तरीके को अपनाता हूं। बीजों की बुआई के बाद मैं सिर्फ फसल काटने के लिए लौटता हूं। मेरी खेती की कुल लागत– फसल बौने और काटने के न्यूनतम कार्य के अलावा कुछ भी नहीं है। यह चावल स्वाद में भी बेहतर है।''*

फोटो : सहजा समृद्धा

सहजा समरूधा किसानों को अपनी फसल प्रदर्शित और अच्छे दामों में बिक्री करने में मदद करता है। किसानों से सीधे उपज प्राप्त की जाती है और नेटवर्क के बिक्री केंद्रों को सप्लाई की जाती है। यह श्रृंखला सीधे उपभोक्ताओं तक उपज पहुंचाने के लिए कायम की गई है। इन उत्पादों की संख्या तेजी से बढ़ रही हैं, जैसे– 20 किस्मों के चावल, गेहूं, बाजरा, दालें, फल एवं सब्जियां, शिशु आहार, प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थ, जैसे– पापड़, स्वास्थ्यवर्द्धक पेय, विविध मोटे अनाजों का आटा, मूल्य संवर्धक उत्पाद और खाने के लिए तैयार खाद्य पदार्थ। सिर्फ पारम्परिक एवं पारिस्थितिकीय खेती से उपजाए गए चावल, मोटे अनाजों (मिलेट्स) और दालों को बढ़ावा दिया जाता है। अपने पोषक और औषधीय महत्व के चलते शहरी इलाकों में इन फसलों, खासकर– विभिन्न किस्मों के पारम्परिक मोटे अनाजों, काला एवं लाल चावल की बहुत मांग है। वर्तमान में सहजा दक्षिण भारत के विभिन्न भागों के 786 किसानों के साथ मिल कर काम कर रहा है और 1,000 से भी अधिक किसान रासायनिक खेती को छोड़ कर पारिस्थितिकीय खेती की ओर जा रहे हैं। सहजा दक्षिण भारत के प्रमुख शहरों में नियमित रूप से 16 बिक्री केंद्रों में उनके जैविक उत्पादों की सप्लाई कर रहा है और धीरे–धीरे अधिक बिक्री केंद्र खोल रहा है।

इस जैव–उद्योग की सफलता का एक प्रमुख कारण सिविल सोसायटी के साथ साझेदारी है। दक्षिण भारत में लुप्त होती जा रही खेती की संस्कृति और समुदाय को पुनर्जीवित करने के लिए किसान समूह, महिला समूह और उपभोक्ता समूह मिल कर कार्य कर रहे हैं। मूल्य निर्धारण नीतियां, उत्पादों का समूह प्रमाणीकरण, पैकेजिंग (प्लास्टिक थैलियों का न्यूनतम इस्तेमाल) और इसी तरह के अन्य तरीके भागीदारी–आधारित हैं। इससे नियोजन में मदद मिलती है और जमीनी हकीकतों के आधार पर प्राप्त प्रतिक्रिया (फीडबैक) का अधिक कुशल तरीके से उपयोग किया जाता है ताकि नतीजे प्रत्येक बार समावेशी एवं बेहतर हों।

सहजा और निसर्गा जैसी पहलें शुरूआत भर हैं। इस तरह के अनेक मंच की जरूरत है ताकि उपभोक्ताओं में जागरूकता बढ़े और किसान स्वास्थ्यवर्धक फसलें उगाने, समुचित मूल्य निर्धारण एवं जैव–विविधता की मजबूती में सक्षम बन सकें। इनसे अधिक किसान पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपनाने को प्रेरित होंगे और आजीविका वृद्धि कर पाएंगे एवं अपनी खेती को जलवायु परिवर्तन के मुताबिक ढाल पाएंगे।

पारिस्थितिकीय खेती सबके लिए क्यों अच्छी है?

पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीकों के तहत पर्यावरण के टिकाऊपन और सामाजिक समावेशन (सोशल इनक्लुजन) पर जोर देकर उपज, उत्पादकता, पोषण एवं कुशलता की दृष्टि से असरदार नतीजे हासिल किए गए हैं।[3] पारिस्थितिकीय खेती ने खाद्य सुरक्षा और खाद्य संप्रभुता में भी योगदान दिया है। पारिस्थितिकीय खेती किसानों, खेती और प्रकृति के बीच रिश्ते को नए सिरे से परिभाषित कर रही है, जिसमें किसान एवं उनके परिवारजन मशीनों तथा महंगी बाहरी लागत की चीजों के बजाए अपने खेत पर ही उपलब्ध सामग्रियों से जैव–कीटनाशक एवं जैव–उर्वरक जैसी चीजें तैयार कर उनका खुशीपूर्वक इस्तेमाल कर रहे हैं। लंबे समय तक एक ही खाद्यान्न की फसल उपजाने के बजाए जैव–विविधता पर जोर दिया जा रहा है। महिलाओं को बीज बचाने, उनकी बुआई, निराई, थ्रेशिंग, फसल की कटाई और उपज की बिक्री में पुरुषों के समान महत्व दिया जाता है।

जब किसान मुख्य फसल के बीच अन्य फसलें उगाने, फसल के रोटेशन और दोहरी पंक्ति या चौड़ी फसल उगाने के तरीके अपनाते हैं तो उन्हें कई गुना अधिक पैदावार मिलती है। दालों और नाइट्रोजन–फिक्सिंग पौधों के उपयोग से मिट्टी के पोषक तत्व नहीं छीनते, बल्कि उस दौरान वे बढ़ते हैं, जिससे मिट्टी का स्वास्थ्य बेहतर होता है। इसके अलावा, रासायनिक चीजों को बंद कर खेत पर तैयार किए गए खाद और वर्मीकम्पोस्ट का इस्तेमाल किया जाता है। इससे सीधे रसायन–मुक्त और स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थों की उपज होती है। इन सभी तरीकों की बदौलत बाजार से खरीदी जाने वाली चीजों (बीज, उर्वरक, खरपतवार, कीटनाशक) की कटौती हो जाती है और इससे किसान कर्ज के जाल में नहीं फंसते। इससे किसानों द्वारा आत्महत्या करने के सिलसिले को भी प्रभावोत्पादक ढंग से रोका जा सकता है।

पारिस्थितिकीय खेती वाले खेत जैव–विविधता की दृष्टि से समृद्ध होते हैं। उनकी फसलों की विविधता, भूमि का अच्छा उपयोग और पशुधन एवं वन उपज का उपयोग खेती की प्रणाली में पर्यावरण संबंधी प्रतिरोधक शक्ति पैदा करते हैं। यह न सिर्फ मौसम संबंधी उन प्रतिकूल स्थितियों और बदलावों का सामना करने के लिए अति–आवश्यक है, जिनसे ग्लोबल वार्मिंग (धरती के तापमान में वृद्धि), सूखे, बाढ़, गरम एवं ठंड़ी हवाओं का मार्ग प्रशस्त होता है और इनका फसल के उत्पादन पर भारी असर पड़ता है। जेनेटिक रूप से संवर्द्धित फसलें (जी.एम.ओ.) विशिष्ट पौधों के जिनोम्स में ही प्रतिरोधक शक्ति लाने का प्रयास करती है, जिसके विपरीत पारिस्थितिकीय खेती पूरी पारिस्थितिकीय खेती प्रणाली में प्रतिरोधक शक्ति को मजबूत बनाती है। इसमें खाद्य संकट, ऊर्जा संकट, वित्तीय संकट और जलवायु परिवर्तन की समस्या के हल के साधन निहित होते हैं।[4]

पारिस्थितिकीय खेती दुनिया भर के छोटे किसानों के लिए उम्मीद की नई किरण के रूप में उभरी है। पारिस्थितिकीय खेती के तौर तरीके अपना कर किसान न सिर्फ अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं, बल्कि हरित क्रांति और जीन क्रांति के कॉरपोरेट मॉडल की खेती का विरोध भी कर रहे हैं। खेती की उत्पादन

[3] *मेके, बी., (ए सोशली इनक्लुसिव पाथवे टू फूड सिक्योरिटी, सेन्टर फोर इनक्लुसिव ग्रोथ, 2012) :* http://www.fao.org/fileadmin/templetes/agphome/scpi/Agroecology/Agroecology-IPCPolicyResearchBrief23.pdf

[4] *हो, एम–डब्ल्यू एंड चिंग, एल.एल. (संपादन और लेखन) : द केस फोर ए जी.एम. फ्री सस्टेनेबल वर्ल्ड, आई.एस.एस. एंड टी.डब्ल्यू. एन., 2003*

लागत की लगातार वृद्धि, कर्जग्रस्तता और बड़े पैमाने पर किसानों की आत्महत्या के इस युग में किसानों के सामने संपूर्ण एवं पारिस्थितिकीय खेती के मॉडल की दिशा में खेती के अपने तौर तरीके बदलने का एक विकल्प उपलब्ध हुआ है। भारत में पारिस्थितिकीय खेती की विविधता का जो मॉडल अपनाया जा रहा है, वह प्राकृतिक खेती, जीरो बजट की प्राकृतिक खेती, रसायन–मुक्त खेती, प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठाते हुए खेती (पर्मेकल्चर) और ऋषि खेती के रूप में यह विकल्प पेश करता है। लेकिन, जैविक खेती पर आधारित पारिस्थितिकीय खेती उस नव–उदारवादी जैविक खेती से भिन्न है, जिसको कॉरपोरेट जगत की वही सब कंपनियां बढ़ावा दे रही हैं, जो हरित क्रांति की तकनीकों का सहारा लेकर फली–फूली हैं और किसानों को गैर–टिकाऊ एवं महंगी बाहरी लागत की चीजों पर निर्भर बनाया है।[5]

हमें दुनिया में भुखमरी मिटाने के लिए खाद्यान्न की अधिक पैदावार करने की जरूरत नहीं है। हमें उन लोगों के लिए एक न्यायसंगत खाद्यान्न प्रणाली बनाने की जरूरत है, जो दुनिया भर के लिए खाद्यान्न पैदा करते हैं। छोटी जोत के किसानों को सिंचाई, बुनियादी ढांचागत सुविधाओं, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच कायम करवाना अत्यंत महत्वपूर्ण है, न कि जी.एम.ओ., कृषि के विशाल स्तरीय विश्व बाजारों के लिए। छोटे किसानों को पोषक खाद्यान्नों की पैदावार के लिए पारिस्थितिकीय खेती की अधिक जरूरत है।

[5] *एग्रोकॉलोजी एंड क्लाईमेट, न्यूलिनी न्यूजलेटर, 2014 :*
http:/www.nyeleni.org/DOWNLOADS/newsletters/Nyeleni_Newsletter_Num_20_EN.pdf

टिकाऊ खेती के बारे में अधिक जानकारी पाने के लिए संपर्क करें—

द टिम्बाक्तु कलेक्टिव	**विनीत/बबलू गांगुली** सी.के. पल्ली गांव, अनंतपुर जिला, आंध्र प्रदेश–515101 ईमेल : vineeth@timbaktu.org/ timbaktu.collective@gmail.com टेलीफोन : +91 944 0686 837/+91 9618019117 वेबसाइट : www.timbaktu.org
तमिलनाडु वुमेन्स कलेक्टिव	**शीलू फ्रांसिस** नं.–10, ईस्ट स्ट्रीट, कालातुर, चेन्नई–600 009, तमिलनाडु ईमेल : womenscollective1@gmail.com टेलीफोन : +9444015851/+91 0442550 5382 वेबसाइट : www. womenscollective.net
अग्रगामी	**अच्युत दास/कुलास्वामी जगन्नाथ जेना** काशीपुर–765015, रायगडा, ओड़ीशा ईमेल : achyutdas@agragamee.org/kulaswami13@gmail.com टेलीफोन : +91 06865285149/+91 0674 2551123 +91 8437073588 वेबसाइट : www. agragamee.org
कर्नाटका राज्य रायथा संघ (के.आर.आर.एस.)	**चुक्की नान्जुनदासवानी/नन्दिनी जयराम** ईमेल : chukki.krrs@gmail.com/nandiniksgowda@gmail.com टेलीफोन : +91 9242 489627
सहजा समरूधा	**जी. कृष्णा प्रसाद/श्री सौमेश** 'नन्दाना', नं.–7, सेकेन्डर क्रॉस, 7 वां मैन सुल्तानपाल्या, बैंगलुरू–560 032, कर्नाटक ईमेल : sahajasamrudha@gmail.com टेलीफोन : +91 8023 655302/+91 9343 934398 वेबसाइट : www.sahajasamrudha.org www.sahajasamrudhaorganics.org
लिविंग फार्म्स	**देबजीत सारंगी** प्लॉट नं.–1181/2146, रत्नाकर बैग–2 टांकापानी रोड भुबनेश्वर–751018 ओड़ीशा ईमेल : livingfarms@gmail.com टेलीफोन : +91 (0) 674-2430616 **प्रदीप पात्रा** प्रोग्राम कॉर्डिनेटर ऑन फूड सोवरेन्टी लिविंग फार्म्स, बीस्सामकटक रायगडा–765019 patrapradeep2009@gmail.com टेलीफोन : 06863247001 मोबाइल : +91-09556825614
रामरति देवी	सरपताहा गांव, संत कबीर नगर, उत्तर प्रदेश टेलीफोन : +91 7800 219401
अवधेश सिंह	धर्वेशपुरा गांव, नालंदा, बिहार टेलीफोन : +91 7250 946233
राकेश कुमार	सोहदीह गांव, नालंदा, बिहार टेलीफोन : +91 9234 337444/ +91 9430 000213

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, एशिया (थाईलैंड, फिलीपीन्स एवं भारत) में स्थित एक नीति शोध संगठन है। फोकस भारत एवं विश्व के दक्षिण भाग (यानी विकासशील देशों) में वैश्वीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इस प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रमुख संस्थाओं के बारे में शोध तथा विश्लेषण प्रदान कर सामाजिक आंदोलनों एवं समुदायों की सहायता करता है। फोकस के लक्ष्य दमनकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं की समाप्ति, स्वतंत्र संरचनाओं तथा संस्थाओं का निर्माण, विसैन्यीकरण और शांति को बढ़ावा देना है।

ROSA LUXEMBURG STIFTUNG SOUTH ASIA

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफतुंग (आर.एल.एस.)

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.) जर्मनी में स्थित एक फाउंडेशन है, जो दक्षिण एशिया की तरह ही विश्व के अन्य भागों में महत्वपूर्ण सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर कार्य कर रहा है। यह एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इसका उद्देश्य समाज एवं नीति निर्धारकों के सामने वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। शोध संगठनों, स्व-मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन मॉडल्स के विकास में उनकी पहलों में मदद देता है, जिनमें अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक न्याय देने की क्षमता हैं।